Library
IIAS, Shimla
ARC
00062142

गियार्गी किम

समाजवादी विश्व

और

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन

ARC

समाजवादी विश्व
और
राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन

गियार्गी किम

नवयुग पब्लिशर्स
चांदनी चौक, दिल्ली

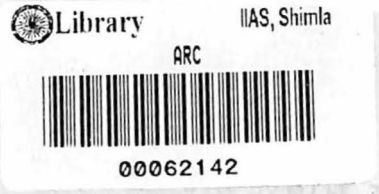
Library IIAS, Shimla
ARC
00062142

62142
7.5.79

1978
प्रकाशक : नवयुग पब्लिशर्स
चाँदनी चौक, दिल्ली
मुद्रक : डी० एम० प्रेस, गांधीनगर 110031
मूल्य : 4 रुपये

प्रोफेसर गियार्गी किम, सोवियत संघ विज्ञान अकादमी के संवादी सदस्य है तथा विज्ञान अकादमी के अन्तर्गत प्राच्य अध्ययन संस्थान में एशियाई एवं उत्तर अफ्रीकी देशों के समसामयिक विकास की सामान्य समस्यायें विभाग के अध्यक्ष हैं। वे "एशिया एवं अफ्रीका" नाम पत्रिका के प्रधान सम्पादक भी हैं।

प्रोफेसर किम राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की समस्याओं के और एशिया तथा अफ्रीका के देशों के समसामयिक एवं आधुनिक इतिहास के विशेषज्ञ हैं। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तकों में "सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद और पूर्व के देशों में क्रान्ति", "मार्क्सवाद एवं राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन" उल्लेखनीय है। डॉ० किम ने लगभग २०० शोध-निबन्ध प्रकाशित कराये हैं, जिनमें तीन खण्डों में प्रकाशित "लेनिन और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन" और दो खण्डों में प्रकाशित "पूर्व और वर्तमान विकासक्रम" में उनके निबन्ध भी सम्मिलित हैं।

डॉ. किम एशियाई एवं अफ्रीकी देशों से एकजुटता की सोवियत समिति के अध्यक्ष मण्डल के सदस्य तथा सोवियत कोरियाई मैत्री समाज के केन्द्रीय मण्डल के उपाध्यक्ष हैं। उन्होंने अनेक अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों और परिसवादों में भाग लिया है, जिनमें प्राच्यविद्याविशारदों की अन्तरराष्ट्रीय कांग्रेसें भी शामिल हैं।

क्रम

महान अक्तूबर क्रान्ति और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन 7
विश्व समाजवादी प्रणाली का गठन और उपनिवेशवार के विरुद्ध सामान्य प्रहार 16
आर्थिक स्वाधीनता के लिए विकासशील देशों का संघर्ष 24
विश्व समाजवाद और नव-स्वतंत्र देशों का समाजवाद की ओर झुकाव 39
नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था के लिए संघर्ष में समाजवादी तथा विकासशील देशों की भूमिका 62

महान अक्तूबर क्रान्ति और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी में अनेकानेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटी हैं, लेकिन जनगण और देशों के भविष्य पर प्रभाव की शक्ति की दृष्टि से उनमें से किसी की भी तुलना महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति से नहीं की जा सकती।

जलपोत ओरोरा द्वारा दागे गये गोलों ने विश्व को प्रथम समाजवादी राज्य के जन्म की और इसके ही साथ मानवजाति के इतिहास में नए युग के सूत्रपात की सूचना दी। जैसा कि व्लादीमिर लेनिन ने लिखा : "पूंजीवाद और उसके अवशेषों का उन्मूलन तथा कम्युनिस्ट व्यवस्था के मूलभूत नियमों की स्थापना में विश्व इतिहास के उस नए युग की विषयवस्तु सन्निहित है, जो प्रारम्भ हो चुका है।"

पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण, जिसका श्रीगणेश अक्तूबर क्रान्ति ने किया वह हमारे युग का वस्तुनिष्ठ नियम है, जबकि मेहनतकश वर्ग विश्व विकासक्रम का केन्द्र बन गया है, जराजीर्ण हो गए सामाजिक सम्बन्धों पर प्रहार कर रहा है और अपने चहुं ओर विश्व क्रान्तिकारी मुक्ति आन्दोलन के अन्य दस्तों को एकत्र कर रहा है। विश्व क्रान्तिकारी प्रक्रिया की एकता और इसके सभी अन्य घटकों के महत्व पर ध्यान दिलाने के साथ-साथ लेनिन ने बड़ी तीक्ष्ण प्रांजलता एवं सटीकता से जनसाधारण के ऐतिहासिक आन्दोलन की प्रमुख दिशाओं को भी इंगित किया था। उन्होंने बताया, "मार्क्स की पद्धति में सर्वप्रथम यह शामिल है कि इतिहास की प्रक्रिया के किसी विशेष समय की निश्चित एवं ठोस परिस्थितियों ने वस्तुनिष्ठ विषय वस्तु का उचित ध्यान रखा जाय और सर्व प्रथम इसका

ध्यान रखा जाय कि किस वर्ग का आन्दोलन उन ठोस परिस्थितियों में सम्भावित प्रगति का प्रमुख स्रोत बन सकता है।" इस विचार को विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत करते हुए लेनिन ने बल देकर कहा कि हमें यह जानकारी न हो सके कि किसी युग के विभिन्न ऐतिहासिक आन्दोलन कितनी तेजी से और कितनी सफलता से विकसित होंगे, लेकिन "हम यह जान सकते हैं और जानते हैं कि इस या उस युग की धुरी कौन-सा वर्ग है। हम उसकी प्रमुख विषयवस्तु निर्धारित कर सकते हैं, इसके विकास की प्रमुख दिशा, और उस युग की ऐतिहासिक स्थिति की प्रमुख लाक्षणिकता निर्धारित कर सकते हैं, आदि।"

लेनिन की इन प्रस्थापनाओं के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन ने यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला : वर्तमान युग के केन्द्र में अन्तरराष्ट्रीय मेहनतकश वर्ग और इसका प्रमुख सृजन विश्व समाजवादी प्रणाली विद्यमान है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी सदैव ही विश्व मेहनतकश आन्दोलन को उच्चतम प्रकार का क्रान्तिकारी आन्दोलन मानते आए हैं क्योंकि इसका सीधा-सीधा लक्ष्य पूंजीवादी प्रणाली का विरोध है। सर्वहारा वर्ग का, विश्व समाजवाद की शक्तियों का संघर्ष ही पूर्ण रूप से और "शुद्ध" स्वरूप में क्रान्तिकारी विकास के सामाजिक सार को अभिव्यक्त करता है। अन्तरराष्ट्रीय मेहनतकश वर्ग, विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रमुख उद्वेलक ने अक्तूबर क्रान्ति के प्रभाव के अन्तर्गत अपनी सभी सृजनात्मक सम्भावनाएं प्रदर्शित कर दी हैं। इसके बाद क्रान्तिकारी प्रक्रिया ने यथार्थ रूप में सार्वभौमिक स्वरूप ग्रहण कर लिया—एक देश में प्रारम्भ होने के बाद समाजवादी क्रान्ति का विश्वव्यापी पैमाने पर समाजवादी रूपान्तरणों की संदेशवाहिनी बनना अवश्यम्भावी था।

लेकिन, लेनिन ने यह कभी नहीं माना कि विश्व समाजवादी क्रान्ति विश्व सर्वहारा वर्ग के एक साथ किये गए कार्य का परिणाम हो सकती है। उन्होंने लिखा, "सामाजिक क्रान्ति सभी देशों के सर्वहारा वर्ग की संयुक्त कार्यवाही इस साधारण कारण से नहीं हो सकती कि अधिकांश देश और विश्व की अधिसंख्य जनता अभी तक विकास के पूंजीवादी चरण में भी तो

नहीं पहुंच पाई है और यदि कहीं पहुंची भी है तो अभी हाल ही में पहुंची है।" और इस अधिसंख्य में उपनिवेशों और पराधीन देशों की जनता भी शामिल है, जिनका भाग्य गुलामों के भाग्य से किसी भी प्रकार बेहतर नहीं।

अक्तूबर क्रान्ति का ऐतिहासिक योगदान इस तथ्य में निहित है कि इसने पूंजीवादी सम्बन्धों की विश्वव्यापी शृंखला को तोड़ डाला और उत्पीड़ित जनगण के लिए राष्ट्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मुक्ति की सम्भावना उन्मुक्त की। लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि समाजवादी क्रान्ति "ऐसे ही युग के रूप में आ सकती है जिसमें सर्वहारा वर्ग द्वारा अग्रगामी देशों के पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध गृहयुद्ध तथा जनवादी और क्रान्तिकारी आन्दोलनों की **पूरी शृंखला** दोनों ही एक साथ हो, जिसमें अविकसित, पिछड़े हुए तथा उत्पीड़ित राष्ट्रों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन भी शामिल हो।"

विश्व क्रान्तिकारी प्रक्रिया की इसी समझ से लेनिन ने योरुपीय सर्वहारा वर्ग से सभी पराधीन देशों के मेहनतकश और किसानों के साथ, जितनी घनिष्ठता से हो सके उतनी घनिष्ठता से एकताबद्ध होने का अनुरोध किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने उपनिवेशों की उत्पीड़ित जनता को परामर्श दिया कि वे योरुपीय सर्वहारा वर्ग से अपने को अलग-थलग न रखें, बल्कि इसके विपरीत उसके जितने घनिष्ठ हो सकें हों, उसके साथ आत्मसात हो जायें। इसी को उन्होंने समान शत्रु—साम्राज्यवाद पर विजय की गारंटी माना।

अक्तूबर क्रान्ति के बाद राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ऐतिहासिक प्रक्रिया के मार्ग पर विकसित होने वाला संकीर्ण आन्दोलन नहीं रहा। सक्रिय राजनीतिक जीवन से उद्‌बुद्ध एशिया और अफ्रीका के जनगण विश्व के सामाजिक पुनर्निर्माण में सक्रिय सहभागी बन गये और इस प्रक्रिया में अपनी लाक्षणिक विशिष्टताओं का, अपनी इच्छा और अपने उत्साह का, विद्यमान कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में अपनी समझ का योगदान करने लगे। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में भूतपूर्व "इतिहासेतर" करोड़ों जनसाधारण के सहभाग ने विश्व क्रान्तिकारी मुक्ति आन्दोलन को शक्तिशाली उद्वेग प्रदान किया।

लेनिन ने लिखा, "अनेक परिस्थितियों के कारण, जिनमें रूस और उसके विशाल क्षेत्रों का पिछड़ापन तथा यह तथ्य कि वह योरुप और एशिया के बीच, पश्चिम और पूर्व के बीच सीमा निर्धारण करता है, साम्राज्यवाद के विरुद्ध विश्व संघर्ष के पुरोगामी होने के फलस्वरूप हमें पूरा प्रहार सहन करना पड़ा और हम इसे महान सम्मान मानते हैं।"

रूस के मेहनतकशों ने किसानों के सहयोग से तथा कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में विश्व पूंजीवाद पर पहला बड़ा प्रहार किया और इस प्रकार विश्व मेहनतकश वर्ग और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के प्रति महान अन्तर-राष्ट्रीयतावादी कर्तव्य सम्पन्न किया।

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने पश्चिम जगत के सर्वहारा वर्ग और पूरब के उत्पीड़ित जनगण के बीच मानो एक पुल का निर्माण कर दिया। साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों की एकता का लेनिन का विचार वास्तविकता बन गया। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने सामाजिक पुनर्निर्माण की विश्वव्यापी क्रान्तिकारी प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन कर अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। हमारे युग की तीन बड़ी क्रान्तिकारी शक्तियां—नवजात समाजवादी राज्य, पूंजीवादी देशों का मेहनतकश वर्ग और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन—साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की एक ही धारा में विलय हो गई। इससे उस तथ्य की पुष्टि हो गई, जिसकी कल्पना वैज्ञानिक समाजवाद के संस्थापकों ने की थी। 1853 में कार्लमार्क्स ने अपने लेख "भारत में ब्रिटिश शासन" में लिखा था: "प्रश्न यह है कि क्या मानव-जाति एशिया की सामाजिक स्थिति में बिना **मूलभूत क्रान्ति** के अपने भवितव्य की पूर्ति कर सकती है? (ज़ोर हमारा-ले.) लगभग आधी-शती बाद 1902 में मानो इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लेनिन ने "क्या करें?" नामक अपनी रचना में लिखा कि इतिहास ने रूस के मेहनतकश वर्ग के सम्मुख न केवल योरुप बल्कि एशिया के प्रतिक्रियावाद के अत्यंत शक्तिशाली प्राचीर को ध्वस्त करने का कर्तव्य प्रस्तुत किया है।

लेनिन ने यह स्पष्ट किया, और बीसवीं शताब्दी की विश्व ऐतिहासिक प्रक्रिया के अनुभव ने इसे पुष्ट कर दिया है कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण अपने शत्रुओं—साम्राज्यवाद और आन्त-

रिक प्रतिक्रियावाद को तभी परास्त कर सकते हैं जब वे अपनी शक्ति को पश्चिम जगत के सर्वहारा जगत की शक्ति से सम्पृक्त करें और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह कि वे विश्व क्रान्तिकारी प्रक्रिया अर्थात् समाजवाद की निर्णयात्मक शक्ति पर भरोसा करें। अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय से भी पहिले लेनिन ने लिखा था कि पश्चिम जगत के मेहनतकशों और पूरब के मेहनतकश लोगों के बीच राजनीतिक एकता व्यापकतर एवं घनिष्ठतर होती जायेगी।

विजयी सर्वहारा वर्ग के भावी विदेश नीतिक मार्ग का निर्धारण करते हुए लेनिन ने जून, 1917 में लिखा था : "सर्वहारा वर्ग की विदेश नीति अग्रगामी देशों के क्रान्तिकारियों की और सभी उत्पीड़ित राष्ट्रों की किसी भी और सभी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध एकता है।"

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने अन्तरराष्ट्रीय मेहनतकश वर्ग और राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियों की एकता के प्रश्न को नए सन्दर्भ में ही रख दिया। पूरब के कम्युनिस्ट संगठनों की द्वितीय अखिल रूस कांग्रेस में (22 नवम्बर 1919) दिये गये अपने भाषण में लेनिन ने विश्व के प्रथम समाजवादी राज्य की भूमिका का राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के प्राचीर के रूप में इस प्रकार परिभाषित किया : "यह स्वतः स्पष्ट है कि पूरब के जनगण का यह क्रान्तिकारी आन्दोलन अब अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारे सोवियत जनतंत्र के क्रान्तिकारी संघर्ष से प्रत्यक्ष संसर्ग से ही प्रभावक रूप में विकसित हो सकता है।" समाजवादी क्रान्ति और सभी उत्पीड़ित और पराधीन जनगण के साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के बीच अपरिहार्य सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए उन्होंने बल देकर कहा कि "अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग ही पूरब के करोड़ों मेहनतकश और शोषितजन का एक मात्र मित्र है।"

लेनिन ने इस संकल्पना की जड़ें अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की सम्पूर्ण गतिविधियों में जमाने के लिए विपुल कार्य किया, जिसके वैचारिक एवं राजनीतिक मंच पर उनका निर्णयात्मक प्रभाव पड़ा था। अक्तूबर क्रान्ति की विजय के कुछ ही समय बाद लेनिन द्वारा अनुमोदित नारा "सभी देशों के मेहनतकश और उत्पी-

ड़ित जनगण एक हो !" जिसने आम जनता के मन में घर कर लिया था, महान भौतिक शक्ति वन गया।

समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की एकता की आवश्यकता का विचार लेनिन की उन सभी प्रमुख रचनाओं में उपलब्ध है, जिनका विषय जातीय—उपनिवेशवाद के प्रश्न हैं। उन्होंने वल देकर लिखा : 'हम मंगोल, फारसी, भारतीय, मिस्री लोगों के साथ सहयोग एवं विलयन की भावना उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक प्रयत्न करेंगे। हम विश्वास करते हैं कि यह हमारा कर्त्तव्य है और ऐसा करना **हमारे हित में है** क्योंकि अन्यथा समाजवाद योरुप में **निरापद नहीं रह पायेगा।**"

साम्राज्यवाद के विश्व-व्यापी मोर्चे को तोड़कर अक्तूबर क्रान्ति ने विश्व के प्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना की। इसकी दो तिहाई भूमि एशिया में हैं और इसके पड़ोसियों में उस महाद्वीप के कुछ विशालतम देश हैं। अपने अस्तित्व के पहले ही वर्षों में सोवियत राज्य ने सभी राष्ट्रों के आत्मनिर्णय तथा स्वतंत्र विकास के अधिकार का समर्थन किया। उसने पूरब के जनगण पर ज़ारशाही सरकार द्वारा थोपी गई सभी संधियों को रद्द कर दिया और उनके साथ समानता के स्तर पर सम्बन्ध स्थापित किये। इस प्रकार साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की नींव पर ही शक्तिशाली प्रहार किया।

अक्तूबर क्रान्ति के अन्तरराष्ट्रीय महत्व को तुच्छ सिद्ध करने के इच्छुक, साम्राज्यवाद के चाटुकार यह सिद्ध करने की अनथक चेष्टा कर रहे हैं कि क्रान्ति तथा लेनिन की कृतियों के रचनात्मक विचारों की अन्य देशों के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं। लेकिन उनके प्रयत्न निष्फल हैं। रूस में हुई समाजवादी क्रान्ति का प्रचुर अन्तरराष्ट्रीय प्रभाव हुआ क्योंकि यह उन्हीं समस्याओं का समाधान कर रही थी, जैसी कि उपनिवेशिक जनगण के सामने मौजूद थीं। इसने न केवल पश्चिम जगत के साम्राज्यवादी देशों पर रूस की निर्भरता का अन्त किया, बल्कि रूस के पूंजीपतियों और बड़े-बड़े जागीरदारों के उत्पीड़न का भी अन्त किया। इसने रूस के जातीय अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न को समाप्त किया और यह स्पष्ट किया कि पहले के पिछड़े हुए लोग, ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त अल्प समय में, त्रासदायक

पूंजीवादी चरण से गुजरे बिना ही पूंजीवाद-पूर्व सम्बन्धों से समाजवाद में प्रविष्ट हो सकते हैं।

समाजवाद की विजय और सोवियत संघ में जातीयताओं के प्रश्न के समाधान ने उपनिवेशों और पराधीन देशों के करोड़ों लोगों के दिमाग पर क्रान्तिपूर्ण प्रभाव डाला और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की बढ़ोतरी को उद्वेग प्रदान किया। वहु जातीय समाजवादी राज्य के निर्माण में सोवियत संघ के अनुभव को विश्वव्यापी मान्यता मिली है तथा यह राष्ट्रीय और सामाजिक मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले सभी लोगों के लिए अमूल्य सहायता है।

जातीयताओं के प्रश्न का लेनिनवादी समाधान और विश्व के प्रथम वहुजातीय समाजवादी राज्य की स्थापना ने उस प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त को निर्मूल कर दिया जो मानवजाति को "उच्च" और "तुच्छ" नस्लों में बांटता था और यह कहता था कि "तुच्छ" स्वतंत्रतापूर्वक अपना विकास करने की योग्यता नहीं रखते और उनका भाग्य यही है कि वे "उच्च" के अधीन रहें।

महान लेनिन ने, जिन्हें एशिया और अफ्रीका के जनगण के क्रान्तिकारी सामर्थ्य में गहरा विश्वास था लिखा कि अक्तूवर क्रान्ति पूरव में राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति के नए युग का सूत्रपात करेगी। उन्होंने "अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध सभी साम्राज्यवादियों द्वारा उत्पीड़ित उपनिवेशों और देशों तथा सभी पराधीन देशों" के संघर्ष की अपरिहार्यता को पहले ही देख लिया था।

अक्तूवर क्रान्ति के वाद सोवियत संघ ने उपनिवेशिक जनगण की ओर सहायता का हाथ बढ़ाया। स्वतंत्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले जनगण को सोवियत संघ की राजनीतिक, राजनयिक, आर्थिक और सैन्य सहायता ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में बिल्कुल ही नई स्थिति उत्पन्न कर दी। आइये, इतिहास के तथ्यों का स्मरण करें ताकि अक्तूबर-क्रान्ति के वाद की अवधि में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के विकास में सोवियत संघ ने क्या भूमिका अदा की इसका अनुमान हो जाय।

1917 तक साम्राज्यवाद ने एशिया और अफ्रीका के जनगण को तोपों

और खड्ग द्वारा जीतकर अपना गुलाम बना लिया था और उनके उपनिवेश-वाद विरोधी आन्दोलनों को कुचल दिया था।

अक्तूबर क्रान्ति ने उपनिवेशों की जनता को राष्ट्रीय मुक्ति के अपने संघर्ष के लिए प्राचीर अर्थात् नवोदित सोवियत जनतंत्र प्रदान किया। विदेशी सैनिक हस्तक्षेप और आन्तरिक प्रतिक्रान्ति तथा अन्य कठिनाइयों के बावजूद सोवियत राज्य ने, लेनिन के व्यक्तिगत आदेशों पर, चीन, मंगोलिया अफगानिस्तान, तुर्की तथा अन्य देशों की जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में मैत्रीपूर्ण सहायता प्रदान की। यह आकस्मिक ही नहीं कि उस समय उपनिवेशिक शृंखला की कई कड़ियां टूटीं (अफगानिस्तान, मंगोलिया, तुर्की)।

यह सच है कि उस अवधि के दौरान उपनिवेशवाद विरोधी आक्रमण विश्व-व्यापी नहीं हो सकता था क्योंकि विश्व-शक्तियों के अन्तर-सम्बन्ध अभी भी साम्राज्यवाद के ही अनुकूल थे। साम्राज्यवादी शक्तियों के शत्रुतापूर्ण महासागर में एकमात्र समाजवादी द्वीप सोवियत संघ राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को केवल सीमित सहायता ही दे सकता था, लेकिन वह सब कुछ किया जो यह कर सकता था (चीन को सैनिक एवं राजनीतिक सलाहकार भेजे; तुर्की को माली और सैन्य सहायता दी, मंगोलिया के क्रान्तिकारी दस्तों के साथ सोवियत सेना ने संयुक्त कार्यवाहियां कीं, अफगानिस्तान को राजनीतिक समर्थन दिया आदि)। उन वर्षों में ही अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से प्रकट हो चुकी थी अर्थात् एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण द्वारा साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष, राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियों का आयाम एवं उनका विकास, नवस्वाधीन देशों की संभावनायें और क्रान्तिकारी प्रक्रिया में उनका स्थान और ये सभी सोवियत संघ के अभ्युदय काल से ही उसकी महत्वपूर्ण राजनीतिक तथा वैचारिक भूमिका से जुड़ गई थीं।

इस सिलसिले में एक के बाद एक घटित होने वाली तीन घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है : प्रथम, महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति, जिसने विश्व में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों में उद्वेग की अनुप्रेरणा दी और साम्राज्यवाद की उपनिवेशिक प्रणाली में संकट उत्पन्न किया; द्वितीय,

दूसरे विश्व युद्ध में साम्राज्यवाद की निकृष्टतम शक्तियों पर सोवियत जनता की विजय, जिसने राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलनों के लिए प्रयोजनपूर्ण उद्वेग की महत्वपूर्ण पूर्व-आवश्यकतायें उत्पन्न कीं; और तृतीय, सोवियत संघ की शक्ति का सुदृढ़ीकरण तथा विश्व समाजवादी प्रणाली का अभ्युदय एवं उसका सुदृढ़ीकरण, जिससे विश्व शक्तियों का संतुलन समाजवाद के अनुकूल परिवर्तित हो गया और इस प्रकार विजयी राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों के अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हुईं, जिससे साम्राज्यवाद की उपनिवेश-प्रणाली धराशायी हो गई।

विश्व समाजवादी प्रणाली का गठन और उपनिवेशवाद के विरुद्ध सामान्य प्रहार

उपनिवेशिक एवं पराधीन देशों की जनता के भाग्य पर द्वितीय विश्व युद्ध के सैनिक एवं राजनीतिक परिणामों का प्रचुर प्रभाव पड़ा। 1945 में विश्व इतिहास के अत्यन्त दुर्धर्ष एवं रक्तरंजित युद्धों में से एक युद्ध समाप्त हुआ। हिटलरी जर्मनी की पूर्ण पराजय के बाद सैन्यवादी जापान की सैनिक एवं राजनैतिक पराजय हुई।

यह सामान्य रूप से स्वीकार्य तथ्य है कि हिटलरी जर्मनी और साम्राज्यवादी जापान दोनों को ही हराने में सोवियत संघ ने निर्णयात्मक भूमिका अदा की। एल. आई. ब्रेज़नेव ने कहा है : "सोवियत जन के वीरतापूर्ण संघर्ष से द्वितीय विश्वयुद्ध के मार्ग में आमूल परिवर्तन आया। द्वितीय विश्व युद्ध की लड़ाइयां व्यापक क्षेत्र पर लड़ी गईं-अटलांटक से लेकर प्रशान्त महासागर तक, ग्रीनलैण्ड के हिम क्षेत्रों से लेकर अफ्रीका के मरुस्थलों तक। लेकिन सोवियत-जर्मन मोर्चा ही सैनिक कार्यवाहियों का प्रमुख क्षेत्र बना। इसी मोर्चे पर न केवल सोवियत जन के ही बल्कि सम्पूर्ण मानव-जाति के भाग्य का निर्णय हुआ।"

जर्मन फासिज्म और जापानी सैन्यवाद के पददलन से अन्तर राष्ट्रीय मंच पर सामाजिक-राजनीतिक शक्तियों के अन्तर-सम्बन्धों में आमूल परिवर्तन आया और यह परिवर्तन शान्ति, जनवाद और सामाजिक प्रगति के अनुकूल रहा।

शक्तियों के बीच यह नया अन्तर-सम्बन्ध उपनिवेशिक प्रणाली के टूटने में निर्णयात्मक कदमों में रहा, जो एशिया में टूटना शुरू हुई। एशिया के जनगण के लिए जापान की सैनिक एवं राजनीतिक भीषण पराजय विशेष

रूप से महत्वपूर्ण रही।

काफी समय तक जापानी सैन्यवाद पूरब और दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों को उपनिवेशिक दासता में जकड़े रहा। साम्राज्यवादी जापान प्रशान्त क्षेत्र की सैन्यकार्यवाहियों में प्रचुर सैन्य-शक्ति का उपयोग करता था। अमरीकी आंकड़ों के अनुसार, 1945 के जुलाई में जापान के 20 लाख से ऊपर अफसर और साधारण सैनिक चीन, कोरिया और ताइवान में थे, 2 लाख से ऊपर थाईलैण्ड और वर्मा में, 5 लाख से ऊपर इण्डोनेशिया और फिलीपीन में तथा 20 लाख से ऊपर स्वदेश में मुकीम थे। इस तरह, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर जापान की सशस्त्र सेना की कुल शक्ति 50 लाख जैसे भीमाकार अंक पर पहुँची हुई थी। उत्तर-पूर्व चीन (मंचूरिया) में ही जापान की क्वांतुंग सेना की कमान में 42 पैदल और 7 घुड़सवार डिवीज़न, 22 पैदल और 2 बख्तरबन्द ब्रिग्रेड तथा अनेकों अलग-अलग रेजिमेंटें मौजूद थीं।

यह ध्यान में रखना चाहिए जापान द्वारा अधिकृत दक्षिणी सागर और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में बड़ी सैनिक टुकड़ियाँ मौजूद थीं। 1942 के मध्य तक, प्रशान्त युद्ध छिड़ जाने के तुरन्त बाद, जापानी फौजों ने मलाया, सिंगापुर, इण्डोनेशिया, वर्मा, हांगकांग, फिलीपीन, न्यू गिनी के कुछ हिस्से, ग्वाम, न्यू ब्रिटेन और अन्य द्वीपों पर अधिकार जमा लिया था। जापान द्वारा अधिकृत दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की जनसंख्या और पूर्व एशिया में पहिले से अधिकार ग्रस्तकर लिए गये क्षेत्रों की कुल मिलाकर आबादी 40 करोड़ से अधिक थी। इस प्रकार एशिया की जनसंख्या का विपुल भाग द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी साम्राज्यवाद के चंगुल में फँस चुका था।

युद्ध के वर्षों के दौरान उपनिवेशिक देशों के सक्षम पुरुष संख्या के काफी बड़े हिस्से को तथाकथित मित्र शक्तियों की सेनाओं में अनिवार्य रुप से भरती कर लिया गया था। उदाहरण के लिए, प्रशान्त क्षेत्र में युद्ध छिड़ने के प्रारम्भ में पश्चिमी शक्तियों की फौजों में 55 प्रतिशत सैनिक टुकड़ियां स्थानीय भर्ती किए गए सैनिकों की थीं। ब्रिटिश सेना का 32 प्रतिशत उपनिवेशों से भर्ती किए गए सैनिकों का था। युद्ध के दौरान भारत में लगभग 25 लोगों को लाम बन्द किया गया था। दस लाख से ऊपर अफ्रीकी मित्र

सेनाओं की पांतों में शामिल होकर लड़े थे।

इस सबसे और होता भी क्या—उत्पीड़ित जनगण की राष्ट्रीय आत्म-चेतना ही तो और अधिक उद्‌बुद्ध होती।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन, जो विश्व मुक्ति-कर्त्ता, फासिस्ट विरोधी आन्दोलन का ही हिस्सा था, बड़े पैमाने पर विकसित हुआ। महान देश भक्ति पूर्ण युद्ध के मोर्चों पर सोवियत जनता की एतिहासिक जीतों के बारे में प्रेरणा पूर्ण समाचार जापानी साम्राज्यवाद द्वारा अधिकृत देशों की जनता तक पहुँचे। स्वतन्त्रता के विचारों से अत्यधिक प्रभावित हो, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने उच्चतर सोपान उपलब्ध किया, अधिक परिपक्व बना और नए संगठनात्मक स्वरूपों का चोला पहिना। इसने एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया में विशालतम आयाम हासिल कर लिया।

स्वाभाविक ही, इन क्षेत्रों के जनगण के भाग्य के लिए सैन्यवादी जापान की पराजय का बहुत महत्व रहा। इस सिलसिले में यह स्मरण कर लेना समीचीन होगा कि क्वांतुंग सेना को हराने के अलावा सोवियत सेना ने उत्तर कोरिया और मंचूरिया में उपनिवेशिक प्रशासनिक तन्त्र को समाप्त कर दिया, जो जनसाधारण को दास बनाने का उपकरण था। इसके साथ ही साथ, आन्तरिक प्रतिक्रियावाद को भी निर्णयात्मक रूप से पराजित किया गया, जो विदेशी उत्पीड़न के लिए सामाजिक आधार की व्यवस्था करता था। इस सबके फलस्वरूप राजनीतिक शक्तियों के अन्तर-सम्बन्ध में जो मूल-भूत परिवर्तन आया वह जनवादी मिली जुली सरकारों की स्थापना के अनुकूल रहा और इसी के कारण जीवन के सभी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी रूपान्तरण का अभियान सम्भव हुआ। अनेक एशियाई देशों में जनता की जनवादी क्रान्तियों की जीत जापानी सैन्यवाद की अन्तिम पराजय के फल-स्वरूप उत्पन्न अनुकूल बाहरी राजनीतिक कारकों द्वारा निर्णयात्मक रूप से सम्भव हुई।

एशिया में जनता के जनवादी राज्यों की स्थापना, चीन लोक गणराज्य, वियतनाम जनवादी जनतंत्र और कोरियाई जनवादी जन-जनतन्त्र की स्थापना ने पूरब में समाजवादी क्रान्तियों के नए ऐतिहासिक सोपान का

श्रीगणेश किया। सोवियत संघ के पड़ोसी देशों—चीन और कोरिया की स्थिति विशेष रूप से लाभदायक रही क्योंकि वे सोवियत संघ की प्रत्यक्ष सहायता पर विश्वास कर सकते थे।

अब हम कुछ अकाट्य ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं। 1945 के शरत् काल में सोवियत सशस्त्र सेना ने क्वांतुंग, जैसी वीहड़ सेना को भीषण रूप से पराजित कर दिया और चीन के उत्तरी-पूर्वी भाग को मुक्त कर दिया। इस प्रकार चीन की जन मुक्ति सेना के लिए अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हो गईं जिसने थोड़े से ही समय में उत्तरी और पूर्वी चीन का काफी बड़ा हिस्सा मुक्त कर लिया, जो बाद में च्यांग काई-शेक सरकार के विरुद्ध चीनी जनता के संघर्ष में प्रमुख आधारों में से एक बना। मंचूरिया में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की सशस्त्र सेना को सोवियत सेना से उच्च कोटि के जापानी हथियार मिले, जिन पर उसने कब्जा कर लिया था। इसके अलावा, सोवियत संघ ने उत्तर-पूर्व चीन के मुक्त क्षेत्रों के द्वारा शस्त्र एवं अन्य विभिन्न सामग्री दी। इसने जन मुक्ति सेना की सैनिक कार्यवाहियों की सफलता में बहुत योग दान किया, जिसने 1947 में सभी मोर्चों पर प्रहार-अभियान छेड़ दिया। 1948 के नवम्बर तक सम्पूर्ण उत्तर-पूर्व चीन कुओमिंतांग फौजों से मुक्त कराया जा चुका था और 1949 की जनवरी के अन्त तक च्यांग काई-शेक की मुख्य सेना को पराजित किया जा चुका था। जन-जनवादी क्रान्ति की पूर्ण विजय आसन्न हो गई। अक्तूबर 1949 को चीन लोक गणराज्य की स्थापना की उद्घोषणा राष्ट्रीय मुक्ति के लिए चीनी जनता की लम्बी लड़ाई की विजय श्री थी।

उत्तर कोरिया में भी जनता की जनवादी क्रान्ति की विजय हुई। 1945 के अगस्त में उत्तर कोरिया में प्रविष्ट होकर सोवियत फौजों ने कई दशकों से चले आए जापानी उपनिवेशक उत्पीड़त का अन्त किया और मेहनतकश वर्ग के नेतृत्व के अधीन जनवादी शक्तियों की विजय के लिए अनुकूल वाह्य राजनीतिक परिस्थितियां उत्पन्न कीं।

एशिया में जनता की जनवादी क्रान्ति विजित करने वाला एक और देश वियतनाम था। वहां पर उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष विशेष रूप से बड़े पैमाने पर चलाया गया था। इस तथ्य के बावजूद कि यह अभी हाल

में ही उदित हुआ था और संख्या की शक्ति की से दृष्टि छोटा था। वियतनाम के सर्वहारावर्ग और उसकी कम्युनिस्ट पार्टी ने इस संघर्ष का नेतृत्व किया था। जापानी अधिकारग्रस्तता के वर्षों से दौरान कम्युनिस्टों के नेतृत्व में गठित वियतनाम स्वतन्त्रता लीग (विएत मिन्ह) ने सार्वजनिक विद्रोह की तैयारियां शुरू कर दी थीं। इन तैयारियों में सैनिक टुकड़ियों का गठन भी शामिल था, जो वाद में मुक्ति सेना का आधार वनीं। इसमें जन-सत्ता के निकायों द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों की स्थापना भी शामिल था।

1945 के अगस्त के मध्य में जनता का आन्दोलन जापानी उत्पीड़कों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में विकसित हो गया। 2 सितम्बर 1945 को हनोई में वियतनाम जनवादी जनतंत्र की स्थापना की घोषणा कर दी गई।

एशिया में समाजवादी राज्यों की स्थापना के साथ ही साथ विश्व समाजवादी प्रणाली के निर्माण की प्रक्रिया भी शुरू हुई। योरूप और एशिया में कई समाजवादी देशों का अस्तित्व में आना अतीव ऐतिहासिक महत्व की घटना थी, जो हमारे देश की सीमा-रचना से बाहर समाजवाद के अभ्युदय का प्रतीक थी।

अक्तूबर क्रान्ति के शीघ्र वाद ही लेनिन ने लिखा कि कम से कम कई अग्रगामी देशों में समाजवादी क्रान्ति की विजय और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना सम्पूर्ण विश्व की राजनीति पर निर्णयात्मक प्रभाव डालने में सक्षम होगी।

उपनिवेशिक प्रणाली के पतन से यह प्रकट हुआ कि अलग-अलग देशों और क्षेत्रों में राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का परिणाम उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की दो निर्णयात्मक शक्तियों—विश्व समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के संश्रय की दृढ़ता पर काफी हद तक निर्धारित होता है।

इस संघर्ष में उन देशों ने सर्वोत्तम नतीजे हासिल किए, जिनमें राष्ट्रीय-मुक्ति शक्तियाँ समाजवादी देशों और सर्वोपरि सोवियत संघ के प्रत्यक्ष समर्थन पर विश्वास कर सकीं। इन देशों में भारत, इण्डोनेशिया और मिस्र शामिल हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध और विश्व समाजवादी प्रणाली की स्थापना के परिणाम-स्वरूप विश्व की राजनीतिक शक्तियों के बीच निर्मित नए संतुलन

ने सम्पूर्ण उपनिवेशिक प्रणाली के विघटन में निर्णयात्मक भूमिका अदा की। एशिया के बाद उपनिवेशिक साम्राज्य का विघटन शुरू हुआ अफ्रीका में, जो उपनिवेशवाद का अन्तिम गढ़ है। इस शती के सातवें दशक के मध्य तक अश्वेत अफ्रीका के बहुसंख्य देश अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता जीत चुके थे। निम्न तथ्यों से पिछले तीन दशकों के दौरान एशिया और अफ्रीका के जनगण के संघर्ष में आए उद्वेग का पता लग जाता है। 1946-50 की अवधि में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 13 नए संप्रभु राज्य उदित हुए और 1966-70 में दस। और आज एशिया और अफ्रीका में 90 संप्रभु राज्य हैं।

एशियाई और अफ्रीकी देशों में सामाजिक-आर्थिक सारतत्व में परिवर्तन इतने तीव्र, सर्वतोमुखी और क्रान्तिकारी थे और विश्व-शक्तियों के अन्तर-सम्बन्धों पर उनका प्रभाव इतना दृढ़ था कि उन्हें पूर्ण विश्वास के साथ राष्ट्रीय आन्दोलनों के सम्पूर्ण युग का अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम कहा जा सकता है।

लेनिन ने लिखा है कि "प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रवृत्ति **राष्ट्रीय राज्यों** के निर्माण की ओर है। उनका विश्वास था कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन, जिसने 20 **वीं शती के प्रारम्भ** में पूरब को अपनी लपेट में लिया नए एतिहासिक युग के शुभारंभ का प्रतीक है—सभी पूंजीवादी-जनवादी राष्ट्रीय आन्दोलनों का अभ्युदय है, जिनका लक्ष्य स्वाधीन राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना करना है।" लेनिन ने इस युग की ऐतिहासिक शृंखला-संरचना, को स्पष्ट रूप से देख लिया था, जो एशिया के जागरण की अवधि के राष्ट्रीय पूंजीवादी जनवादी आन्दोलनों के साथ प्रारम्भ हुई और जो उपनिवेशिक जुये से मुक्ति तथा स्वाधीन राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना अर्थात् साम्राज्यवाद की उपनिवेशिक प्रणाली के उन्मूलन के साथ पूर्ण होनी थी।

इस प्रकार, इस शती के सातवें दशक के प्रारम्भ में राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियों का पूर्ण युग पूरा हो गया। उपनिवेशिक प्रणाली का अन्त और स्वाधीन राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना ने अफ्रेशियाई राज्यों के इतिहास में गुणात्मक रूप से नए सोपान का श्रीगणेश किया। इसकी लाक्षणिकता इस परिवर्तन में दृष्टिगोचर हुई कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के परम्परागत

62142
7.5.79

स्वरूपों का स्थान नए स्वरूपों ने ले लिया, जिनका मुख्य उद्देश्य अपनी भूमि से उपनिवेशवादियों को खदेड़ बाहर करना था।

साम्राज्यवाद की उपनिवेशिक प्रणाली के ध्वंस के फलस्वरूप 150 करोड़ से ऊपर लोग उपनिवेशिक और अर्ध-उपनिवेशिक दासता से मुक्त हो गए। बलशाली विश्व समाजवादी प्रणाली का अस्तित्व उपनिवेशवाद को ध्वस्त करने में निर्णयात्मक कारक था, क्योंकि इसने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रहार में सभी प्रगतिशील शक्तियों द्वारा अपने संयुक्त प्रयत्नों के लिए अभूतपूर्व सम्भावनायें उत्पन्न कर दी थीं।

इतिहास में पहली बार ऐसी परिस्थितियां उदित हुई हैं, जिनसे अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले उपनिवेशों के जनगण समाजवाद की शक्तियों पर निर्भर रह सकें और विश्व सामाजिक विकास के सम्पूर्ण मार्ग पर अधिकाधिक प्रभाव डाल सकें।

राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों की विजय ने अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में गहरे परिवर्तन किए। इससे विश्व इतिहास में नए युग का श्रीगणेश हुआ, जिसकी अपरिहार्यता को लेनिन ने कई दशक पहिले देख लिया था : "ऐसा युग जिसमें पूरब के सभी लोग पूरे संसार के भवितव्य के निर्णय में हाथ बँटायेंगे।"

हमारे युग में विश्व समाजवादी प्रणाली का अस्तित्व राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों के विकास के लिए, आर्थिक मुक्ति के जरिये राजनीतिक स्वाधीनता को मजबूत करने के लिए विकासशील देशों के सफलतापूर्ण संघर्ष के लिए और उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी दबावों के सभी स्वरूपों के विरुद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण सैनिक राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति है।

सोवियत संघ के ट्रेडयूनियनों की 16 वीं कांग्रेस में भाषण करते हुए एल० आई० ब्रेज़नेव ने इस ओर ध्यान दिलाया था। "अपनी विदेश नीति में हम और हमारे समाजवादी मित्र दृढ़तापूर्वक शान्ति के लेनिनवादी मार्ग का परिपालन करते हैं। जिन देशों ने उपनिवेशिक जूये से अपने को मुक्त कर लिया है उनसे सहयोग का विकास करके और उसे गहन बनाकर तथा जहां तक सम्भव हो सके पूंजीवादी राज्यों के यथार्थवादी दृष्टिकोण वाले क्षेत्रों से सहयोग करके समाजवाद के देश विश्व के राजनीतिक वातावरण में सुधार लाने से लक्षित ठोस पहलकदमियां प्रस्तुत करते हैं।"

विश्व समाजवाद की शक्तियां राष्ट्रीय-मुक्ति की क्रान्तियों को व्यापक एवं गहन वनाने में निर्णयात्मक रूप से योगदान कर रही हैं। और दूसरी ओर, उपनिवेशवाद के राजनीतिक प्रभुत्व को तीव्रता से संकीर्ण करके ये क्रान्तियां समाजवाद के अनुकूल और साम्राज्यवाद के प्रतिकूल शक्तियों के कुल अन्तर-सम्बन्ध में व्यापक रूप से प्रभाव डालती हैं।

दो-तीन दशकों की ही अपेक्षाकृत कम ऐतिहासिक अवधि में उपनिवेशिक उत्पीड़न की सम्पूर्ण प्रणाली ध्वस्त कर दी गई है। आज हम पूरे विश्वास के साथ इस प्रणाली के पूर्ण उन्मूलन की वात कह सकते हैं क्योंकि कुछ छोटे उपनिवेशिक अंत: क्षेत्रों और दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी सरकारों के गुट को छोड़कर (ज़िम्वाब्वे, नामीविया और दक्षिण अफ्रीका गण राज्य), शब्द के पुराने अर्थों में उपनिवेश अव संसार में कही भी विद्यमान नहीं। उनके स्थान पर लगभग 100 नए संप्रभु राज्य स्थापित हो चुके हैं। इसलिए, उपनिवेशिक उत्पीड़न के अन्तिम अवशेषों को निर्मूल करने का संघर्ष जारी रखा जाना है।

उधर "तृतीय विश्व" के नव स्वाधीन जनगण, जिन्होंने राज्यीय स्वतंत्रता विजित कर ली है और साम्राज्यवाद की शक्तियों के वीच, जिन्होंने रणनीति एवं युक्तिचालन में नया और नव उपनिवेशी स्वरूप अपना लिया है, नए प्रकार के अन्तरविरोध उत्पन्न हो रहे हैं। यह टकराव राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन के वर्तमान चरण, का उस चरण का निर्णयात्मक लक्षण है, जो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए राजनीतिक संघर्ष से आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक मुक्ति के (राजनीतिक, आर्थिक, संगठनात्मक, वैचारिक आदि के) संघर्ष में संतरण का चरण है।

आर्थिक स्वाधीनता के लिए विकासशील देशों का संघर्ष

आर्थिक स्वाधीनता की समस्या को प्रमुख पहलू है—आन्तरिक और वाह्य। तदनुसार, किसी भी देश की आर्थिक स्वाधीनता दो मुख्य वस्तु-निष्ठ मानकों द्वारा निश्चित किया जा सकता है : अपने प्राकृतिक और जनशक्ति संस्रोतों, संचयित साधनों और उत्पादन परिसम्पत्तियों का अधिकतम स्वतंत्र उपयोग तथा आधुनिक श्रम-विभाजन में स्थिर, समान सहभाग।

वाह्य और आन्तरिक पहलू आर्थिक विकास के सभी चरणों में एक ही जैसी भूमिका अदा नहीं करते हैं लेकिन दोनों ही और विशेषकर वर्तमान युग में सामाजिक आर्थिक और तकनीकी प्रश्नों के सम्पूर्ण पुंज का ही अंग हैं, जिसका सामना लगभग प्रत्येक राज्य को करना पड़ता है। विकासशील देशों के लिए यह समस्या लगभग तात्कालिक ही है।

मुक्ति के वाद की अवधि में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के अधिकांश देशों ने अपनी आर्थिक स्वाधीनता से सम्वद्ध दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निश्चित प्रगति हासिल की है। प्रथमत: समाजवादी राज्यों के नैतिक एवं भौतिक समर्थन पर निर्भर करते हुए उन्होंने उपनिवेशिक अतीत और प्रमुख देशों की प्रभुत्व पूर्ण स्थिति से उत्पन्न होने वाली आर्थिक पराधीनता के वंधन के स्वरूपों से अपने को काफी सीमा तक मुक्त कर लिया है। उन्होंने अपने प्राकृतिक संसाधनों के और अधिक पूर्ण उपयोग में, आन्तरिक रूप से आशातीत पूंजी मुहैया करने में और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिए उसका निवेश करने में तथा अपने आगे विकास की आधारशिला रखने में भी सफलता हासिल करली है। यह ठीक है कि

ये सभी प्रक्रियायें समरस प्रकार से घटित नहीं हुई है। कई प्रकार के टेढ़े-मेढ़े कदम उठे हैं और कई वार तो ये कदम प्रतिगामी रहे हैं लेकिन कुल मिलाकर सभी उल्लिखित दिशाओं में प्रगति हुई है, जो कि आर्थिक स्वाधीनता के प्राथमिक आधार की स्थापना के हीं वरावर है।

नवस्वाधीन राज्यों को अनुभव ही ने यह वता दिया है कि उन्हें प्रमुख आर्थिक नीति निर्णयों को स्वीकार करते समय स्वाधीनता कायम रखने के लिए तथा पराधीन आर्थिक स्थिति की सभी अभिव्यक्तियों और पुनरोदय को दूर करने के लिए निरन्तर सतर्क रहना पड़ेगा। आर्थिक क्षेत्र में साम्राज्यवाद के साथ अन्तर-विरोध तव तक रहेंगे जव तक पश्चिम जगत के शासक-क्षेत्र अपने नव-उपनिवेशवादी अभियान पर अटल वने रहेंगे, जव तक भूतपूर्व केन्द्रीय देश अथवा शक्तियां, जिनके विशेष "प्रभाव-क्षेत्र" है अपनी प्रभुत्वपूर्ण स्थितियों को वनाये रखने की कोशिश करते रहेंगे और वहुराष्ट्रीय निगम कम-विकसित देशों और क्षेत्रों में निर्णयात्मक लाभ हासिल करने का प्रयत्न करते रहेंगे।

सामाजिक-आर्थिक गैर-उपनिवेशीकरण के प्रथम चरण के कर्त्तव्यों की पूर्ति के साथ ही साथ वैज्ञानिक और प्रोद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित वनाने की आवश्यकता अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती जाती है।

आज, किसी विशेष देश की आर्थिक स्वाधीनता की समस्या अपने आप में ही अन्त नहीं रह जाती, वल्कि विकास की व्यापकतर रणनीति का अभिन्न अंग वन जाती है, जिसमें वाह्य और आन्तरिक कारक, राजकीय योजना के अल्पावधि और दीर्घावधि तत्व और वढ़ोतरी के सामाजिक एवं आर्थिक पहलू शामिल होते हैं। इसका प्रस्थापन करते समय नव स्वाधीन राज्यों के वीच क्षेत्रीय और अन्तरराज्यीय स्तरों पर विकसित हो रही प्रक्रियाओं के एकीकरण का तथा आर्थिक, तकनीकी और वैज्ञानिक सम्पर्कों के क्षेत्र में विकासशील और समाजवादी देशों के वीच तीव्रीकरण की प्रवृति का ध्यान रखना पड़ेगा।

इस सिलसिले में किसी खास समय और किसी खास देश के लिए आयात-आदेश और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखों में निर्यात-

अभिमुख उत्पादन के बीच चरम अन्तर-सम्बन्ध स्थापित किये जाने का प्रश्न विशेष तात्कालिकता ग्रहण कर लेता है। अनुभव ने यह प्रकट किया है कि यह समस्या पूर्ण इकाई है और बढ़ोतरी के एक पहलू पर एक-तरफा ज़ोर अन्ततः उचित सिद्ध नहीं होता।

किसी भी नव-स्वाधीन देश के लोगों की सामाजिक आवश्यकतायें, अर्थात् आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और तकनीकी आवश्यकतायें तथा मात्रा और विशेषकर गुण सम्बन्धी आन्तरिक उपभोक्ता मांग स्थानीय उत्पादन और संसाधनों की अपेक्षा तेज़ी से बढ़ती है, जिससे विश्व-मण्डी से विस्तृत सम्बन्ध स्थापित किये जाने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप यदि निर्यात् को बढ़ाने और निर्यात-अभिमुख उत्पादन को बढ़ाने के लिए कारगर दीर्घावधि उपाय नहीं किये जाते तो जहां तक राज्यीय वित्त, शेष भुगतान, विदेशी पूंजी निवेश आदि का सम्बन्ध है और अधिक आर्थिक पराधीनता बढ़ सकती है।

शायद, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है आन्तरिक आर्थिक रणनीति, जिस पर अन्ततः आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने और सच्ची आर्थिक स्वाधीनता दोनों बातों की सफलता निर्भर है। अनेक विकासशील देश विकास के प्राथमिक चरण से माध्यमिक चरण में प्रविष्ट होने की चुनौती का सामना कर ही रहे हैं और कुछ को भविष्य में इसका सामना करना पड़ेगा अर्थात् कृषि, उपभोक्ता उद्योग और सेवाओं के क्षेत्र समेत अर्थ-व्यवस्था की सर्वतोमुखी बढ़ोतरी के चरण में, सम्पत्तिधारी वर्ग के, जो जनसंख्या का छोटा सा ही अंश है, रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के स्थान पर प्रभावक रोजगार में लगे समाज के प्रमुख वर्गों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के चरण में प्रविष्ट करने की चुनौती का सामना करना पड़ेगा।

इन कर्त्तव्यों के समाधान में विकसित देशों की तकनीकों, टैक्नॉलॉजिों और औद्योगिक संयंत्रों के अत्याधुनिक तैयार-शुदा नमूनों को ज्यों का त्यों उठाकर रख देना मात्र ही शामिल नहीं। कम विकसित देशों के सामने तो कर्तव्य यह है कि विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की स्वतंत्र नीति के ज़रिये (स्थानीय स्थितियों को ध्यान में रखते हुए) अर्थव्यवस्था के प्रत्यक्ष आधुनिकी-

करण और अर्थव्यवस्था के उन पिछड़े हुए क्षेत्रों में अधिक धीमी गति से हासिल परन्तु पुनर्नवीकरण के सर्वतोमुखी कार्यक्रम की प्रगति में पहल के बीच शुद्ध अनुपात को मालूम करना है, जिनमें मेहनतकश लोगों का अधिकांश संकेंद्रित है।

इस अत्यन्त कठिन श्रम और विज्ञान-सघन संक्रिया की सफलता पर जिसमें लोकतांत्रिक कृषि-सुधार, विदेशी पूंजी को कम करना तथा उसका देश से निष्कासन, जनसंख्या के संघ के राजकीय कृषि फार्मों का विस्तरण एवं सुदृढ़ीकरण, ग्रामीण एवं औद्योगिक पेशों की एकता आदि शामिल हैं, राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्तियों के अत्यन्त मूलभूत कर्त्तव्यों का समाधान निर्भर करेगा।

एक ओर, नवोदित राज्यों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच आर्थिक और सामाजिक मुक्ति के लिए संघर्ष किया जाता है और दूसरी ओर यह संघर्ष नवस्वाधहीन राष्ट्रीय राज्यों के अन्दर चलता रहा है। मास्को में 1969 में हुई कम्युनिस्ट एवं मेहनतकश पार्टियों की अन्तरराष्ट्रीय बैठक के दस्तावेजों में कहा गया है: "नव-स्वाधीन देशों में सामाजिक विभेदीकरण विकसित हो रहा है। एक ओर तो मेहनतकश वर्ग, किसान वर्ग और अन्य जनवादी शक्तियों में जिनमें निम्न पूंजीवादी वर्ग के राष्ट्रीय चेतनाधारी वर्ग भी सम्मिलित हैं और दूसरी ओर साम्राज्यवाद तथा आन्तरिक प्रतिक्रियावाद की शक्तियाँ राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग के वे तत्व जो साम्राज्यवाद से अधिकाधिक सौदेबाजी स्वीकार करती जा रही हैं, दोनों के ही बीच तेज़ संघर्ष चल रहा है।

इसके फलस्वरूप अफ्रेशियाई देशों में हो रही सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं और अन्तरराष्ट्रीय मंच पर शक्तियों के अन्तर-सम्बन्ध में नए, विशेष सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं। इनमें से अनेक देशों के लिए अन्तरराष्ट्रीय कारक आन्तरिक प्रक्रियाओं का उच्च महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बनता जा रहा है, ऐसा कारक, जो **क्रान्तिकारी** प्रक्रिया के मार्ग पर अत्यधिक और कई बार निर्णयात्मक प्रभाव डालने में समर्थ है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय-मुक्ति शक्तियों के इस या उस दस्ते की राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय तत्वों को संयुक्त कर पाने की वास्तविक योग्यता, अन्तिम गणना में क्रान्तिकारी

प्रक्रिया का प्रमुख कारक बन जाती है।

राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों की जीतके बाद एशिया और अफ्रीका में हो रहे आमूल सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों का प्रगतिशील स्वरूप निस्सन्देह वर्ग शक्तियों के अन्तर-सम्बन्ध पर और सर्वोपरि सर्वहारा और वाम-जनवादी शक्तियों की स्थिति पर निर्भर करता है। अफ्रेशियाई विश्व में क्रान्तिकारी प्रक्रिया अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ रूप में विकसित होती है, जिसका संकेत मुक्ति-आन्दोलनों के चरित्र की विभिन्नता से, उनके नेतृत्व और वर्ग-आधार से, उनको सामाजिक-राजनीतिक झुकावों और उनके द्वारा हासिल परिणामों से स्पष्ट हो जाता है।

राष्ट्रीय-मुक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में घटित होने वाली महत्वपूर्ण लाक्षणिकताओं की ओर संकेत करते हुए एल. आई. ब्रेज़नेव ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25 वीं कांग्रेस में कहा था : "मुक्त हुए अनेक देशों में वर्ग-विभेदन की जटिल प्रक्रिया चल रही है, वर्ग संघर्ष तीव्रता ग्रहण करता जा रहा है।"

इस लक्षण-तथ्य के पीछे है क्या ? राज्य-पद स्वाधीनता प्राप्त करके अफ्रेशियाई देशों के जनगण के सामने सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में उप-निवेशवाद के अवशेषों को समाप्त करने का तात्कालिक कर्त्तव्य उठा, जो तभी सम्भव है जब आमूल परिवर्तनकारी सामाजिक-आर्थिक सुधार किये जांय। इन सुधारों की तामील कैसे की जाय। ये सुधार कितने क्रान्तिकारी हों और उनसे समाज के किन वर्गों और संस्तरों को लाभ पहुँचाया जाय—इन्हीं मुद्दों पर विभिन्न वर्गों के हित में परस्पर विरोध उठता है, इसका परिणाम यह होता है कि वर्ग संघर्ष तेज़ होता है।

राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों के अपने सामाजिक पहलुओं की तेज़ी और विकास के मार्गों के चयन से सम्बद्ध तथा सोपान सामाजिक-वर्ग शक्तियों के अन्तर-सम्बन्ध में परिवर्तन ला रहे हैं। जबकि राजकीय संप्रभुता के लिए सामान्य राष्ट्रीय संघर्ष की अवधि में साम्राज्यवाद विरोधी एकता के ढाँचे के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों और सामाजिक संस्तरों के हित मोटे तौर पर एक ही है, आज हम वर्ग अन्तरविरोधों की बढ़ती हुई उग्रता का चर्चा कर सकते हैं, जो सामाजिक शक्तियों का संस्तरीकरण करते हैं उनका और

ध्रुवीकरण करते हैं। यद्यपि सामान्य राष्ट्रीय आकांक्षायें किसी हद तक (कम से कम कई देशों में) बनी रहती हैं और सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं से आंतरिक रूप से जुड़ी रहती हैं, तथापि ये सामाजिक-आर्थिक आकांक्षायें अधिकाधिक रूप से आगे बढ़ती जा रही हैं, जिसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति राजनीतिक और वैचारिक संघर्ष में होती है।

इस सिलसिले में, कुछ अपवादों के साथ यह कहना संभव है कि राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति के सामाजिक पहलुओं के चहुंओर संघर्ष, मुख्यरूप से, राष्ट्रीय पूंजीवादी, उदार पूंजीवादी, क्रान्तिकारी जनवादी और सर्वहारा स्वरूपों में विकसित होता है, जिनके पीछे निश्चित वर्ग और सामाजिक समूह होते हैं।

नव-स्वाधीन देशों में आर्थिक स्वाधीनता के लिए आधार स्थापित करने का परिणाम महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन होता है, जिसके साथ ही साथ सामाजिक-वर्ग संरचना में बुनियादी परिवर्तन होते हैं। यह प्रक्रिया औद्योगिक विकास और जनसाधारण की सामाजिक जागृति में निरन्तर बढ़ोतरी द्वारा उद्वेलित होती है।

विकासशील देशों की संतरणकालीन समाज सामाजिक संस्तर रचना की दुर्धर्ष प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। उनमें होने वाली सामाजिक-वर्गीय प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय विशेषतायें अत्यधिक मात्रा में होती है और अभी भी उनके पूर्ण होने में काफी समय लगेगा। इसके फलस्वरूप इन वर्गों, सामाजिक संस्तरों और समूहों के बीच स्पष्ट विभाजन रेखायें खींचना अभी असंभव है। अनेक आन्तरिक और वाह्य कारक, विशेषतया परम्परागत पूंजीवादी पूर्व समाज के अवशेषों की अपेक्षया स्थिरता, संतरण-कालीन समाज के सामाजिक रंगीली के विभिन्न भेदों को धुंधला देते हैं।

विकसित पूंजीवादी समाजों से बिल्कुल भिन्न, जिनमें परस्पर विरोधी वर्गों में और विशेषतया सर्वहारा और पूंजीवादी वर्गों में बिल्कुल स्पष्ट रूप से टकराव होता है, ऐसे देशों में जिनमें कई सामाजिक आर्थिक संरचनायें होती हैं, वर्ग-संरचना कुल मिलाकर इतनी स्पष्ट नहीं होती क्योंकि सामाजिक वर्गों और समूहों में अस्पष्ट से भेद होते हैं (उदाहरण के लिए छोटे उपक्रमों के स्वामियों और अर्ध-सर्वहारा वर्ग के बीच), अनेकानेक

सतरण कालीन संस्तरों और समूहों का अस्तित्व होता है तथा सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों पर वर्ग निरपेक्ष दीक्षाओं के जिनमें परम्परागत दीक्षायें भी शामिल होती है, अध्यारोपण होता है।

विकासशील देशों की सामाजिक संरचना बिकसित देशों की तुलना में अधिक जटिल होती है। उसमें कई घटक होते हैं और स्वरूप की दृष्टि से कम सुस्पष्ट होती है। उनमें अनेक वड़े संतरणकालीन सामाजिक संस्तर होते हैं। एशियाई और अफ्रीका देशों में हमें शास्त्रीय ढंग से परिभाषित वर्ग देखने में अधिक नहीं मिलते यथा पूंजीवादी वर्ग, सर्वहारा वर्ग अथवा किसान अथवा इस प्रकार के मध्यवर्ती वर्ग यथा **"पूंजीवादी" सामन्त, व्यापार में संलग्न शेख, भू स्वामी अधिकारीगण, निपट निर्धन, लुम्पेन तत्व आदि।**

इसका यह अर्थ नहीं कि "तृतीय विश्व" के लिए मार्क्सीय वर्ग-दृष्टि अव्यावहारिक है। इसका अर्थ यह है कि वर्ग-दृष्टिकोण लागू करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि विकासशील देश में प्रत्येक वर्ग संतरण (रचना अथवा विघटन) की अवस्था में है, इसका स्वरूप स्पष्ट नहीं है और वह अन्य वर्गों के साथ सम्पृक्त है आदि। इसका अर्थ यह हुआ कि एशिया और अफ्रीका के देशों के आधुनिक समाज की सामाजिक संरचना में इस या उस प्रकार की सामाजिक प्रणाली के अन्तर्निष्ठ आन्तरिक श्रेणी करण ही देखने को नहीं मिलेंगे, वल्कि उस समाज के अन्तर्गत पक्षीय **श्रेणियां** भी देखने को मिलेंगी, जिनकी अभिव्यक्ति वर्ग समाज के विकास के विभिन्न चरणों के तत्वों के साथ ही साथ ही होगी, यथा, पितृसत्ताक कम्यून, सामन्ती अथवा अर्ध सामन्ती पराधीनता, कुल अथवा क़बीलाई सम्बन्ध आदि। एक ही सामाजिक कायांग के अवयवों का समान्तर कार्य, जो विकास के विभिन्न सोपानों में हैं अफ्रेशियाई देशों की सामाजिक प्रणाली और सामाजिक संरचना की मुख्य विलक्षणताओं में है। यथार्थ तो यह है कि एशिया और अफ्रीका में आधुनिक समाज एकीकृत है और इसके विभिन्न भाग एकबद्ध है। लेकिन समाज के विभिन्न क्षेत्रों की एकता के अंशों में भेद तथा उनके अन्तर-सम्बन्धों के मध्य भेद अफ्रेशियाई समाज के इस या उस प्रकार के निश्चित समाज के प्रचलित सामाजिक टायप तथा कुल विकास

के विस्तार को निर्धारित करते हैं।

यह सामाजिक-वर्गीय संरचना सर्वोपरि संतरणकालीन, विकासशील देशों के लाक्षणिक सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों के बहुसंरचनीय स्वरूप का प्रतिफल है। यह एशियाई और अफ्रीकी देशों में परम्परागत पूंजीवादी-पूर्व (और कभी-कभी सामन्ती-पूर्व की) सम्बन्धों और परम्परागत क्षेत्रों द्वारा अभी भी अदा की जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका से भी सम्बद्ध है। समाज का बहु-संरचनीय स्वरूप उन देशों में अनेकानेक वर्गों के अस्तित्व का आधार है। इसके अलावा, विभिन्न विरचनाओं, वर्गों और सामाजिक समूहों में अन्तर-मिलन होता रहता है, उनके बीच सम्पर्क और संघर्ष होते रहते हैं। इसलिए, संतरणकालीन सामाजिक टायपों की बहुलता होती है, जो विभिन्न सामाजिक कार्य सम्पादित कर रहे होते हैं। उदाहरण के लिए, पितृसत्ताक कम्यून की परिधि में बने रहते हुए भी कोई किसान किसी सामन्त का कर्जदार हो सकता है, किसी कृषि-उद्यमी के यहां अस्थायी तौर पर खेत में काम करने वाला हो सकता है और बाज़ार के लिए माल उत्पादित करने वाला छोटा उत्पादक हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति में यह किसी भी नागर मेहनतकश अथवा बुद्धिजीवी के लिए कुछ विशिष्ट नहीं कि वह अपने क़बीले, कुल, धार्मिक समुदाय अथवा पंथ के प्रति वफ़ादार बना रहे। यह सब कुछ प्रत्यक्ष रुप से सामाजिक शक्तियों के वितरण पर, सामाजिक विकास और राजनीतिक जीवन के स्वरूप पर प्रभाव डालता है।

परम्परागत संरचनाओं के विघटन के तत्वों का परित्याग आधुनिक सामाजिक संरचनाओं में उनके अन्तर्लयन और प्रवेश से आशातीत अधिक होता है। फलस्वरूप एशिया और अफ्रीका में लगभग सभी देशों में (सिंगापुर, मलयेसिया आदि विरल अपवाद हैं) समाज के बढ़ते हुए आधुनिक क्षेत्र और परम्परावाद के अवशेषों के बीच अन्तरालों में **अर्ध-पारम्परिक** संस्तरों निपट निर्धन, लुम्पेन समूह, सर्वहारा-पूर्व जन, अर्ध-सर्वहारा जन के विशाल जन-समूह का संकेन्द्रण दिखाई पड़ता है। यह प्रक्रिया असामान्य जनसंख्या वृद्धि से, जो अधिकांश एशियाई और अफ्रीकी देशों में अनियंत्रित है और (पूंजीवादी तथा पूंजीवाद-पूर्व प्रणाली में) वैज्ञानिक एवं औद्योगिक उपलब्धियों की अविवेकपूर्ण तामील के किन्ही नकारात्मक परिणामों से अत्य-

धिक तीव्र हो जाती है। अपने आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के प्रयास में विकासशील देश बहुधा अत्यधिक आधुनिक उद्यमों की स्थापना करने की ओर झुक जाते हैं, जिनमें रोजगार की बढ़ोतरी के लिए केवल न्यूनतम अवसर होते हैं। इससे भी अधिक घातक है बहुराष्ट्रीय इजारेदारियों और विदेशी पूंजी की यह प्रवृत्ति कि विकासशील देशों में कार्य-शक्ति के रख-रखाव पर पहले से ही कम खर्चे को और कम किया जाय। और इससे रोज़गार दिये जाने की क्षमता को बढ़ाने की दिशा में नहीं के बराबर योग-दान होता है। फ़स्लबरूप, ग्रामीण जनसंख्या में पर्याप्त से अधिक वृद्धि, जीवित पितृसत्ताक और सामन्ती संरचनाओं का विघटन और नगरों में व्यापक बेरोजगारी, जो उपनिवेशिक युग से विरासत में मिले पिछड़ेपन का प्रतिफल है से तथाकथित सीमान्त संस्तर में निरन्तर वृद्धि होती रहती है, जिन्होंने अपने को पारम्परिक संरचना से अलग-थलग कर लिया है, लेकिन जिनके पास राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के अत्यधिक आधुनिकीकृत क्षेत्र में प्रवेश कर पाने का कोई अवसर नहीं है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पश्चिमी जगत के देशों के लिए परम्परागत संस्तरों से विघटन और नए उत्पादन सम्बन्धों के क्षेत्र में उनके प्रवेश के बीच इतने व्यापकऔर देर तक चलने वाले विच्छेद बिल्कुल अपरि-चित हैं। करोड़ों लोग इस परिधि में आते हैं। आज अफ्रेशियाई जनसंख्या का पांच में से एक हिस्से से लेकर एक तिहाई तक निपट निर्धन और वर्ग-च्युत तत्व हैं।

स्वाधीनता ने उन उपनिवेशिक रुकावटों को दूर कर दिया है, जो अधिकांश मामलों जनसंख्या के निष्क्रमण को रोकते थे, जिसके फलस्वरूप ये अर्ध-पारम्परिक सीमान्त संस्तर बड़े-बड़े नगरों के आस-पास संकद्रित हो जाते थे। जैसा कि ऐंगेल्स ने "जर्मनी में कृषक-युद्ध" में और काउत्स्की के नाम लिखे अपने पत्रों में लिखा कि इतिहास में ऐसे मोड़ों पर ये वर्ग-च्युत तत्व **जनसंख्या का अत्यन्त सक्रिय अंग** होते हैं तथा **क्रान्तिकारी और अत्यन्त दक्षिण पंथी प्रतिक्रियावादी दोनों ही शक्तियों के हाथ का हथियार आसानी से बन सकते हैं।**

अनुभव से प्रकट है कि यह परिघटना ऐसे देशों में विशेष रूप से विशाल

आयाम ग्रहण कर लेती हैं जो सिविल और सैनिक युद्ध के लम्बे दौर से गुजरे हों (यथा 1911-1948 में चीन) अथवा उपनिवेशवादियों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लम्बे दौर से गुजरे हों (यथा इण्डोनेशिया, फिलस्तीन, अल्जीरिया)।

अफ्रीकी और एशियाई देशों में अर्ध-पारम्परिक सीमान्त संस्तर के 'संचय' की दृष्टि से भेद है (और इसीलिए क्रान्तिकारी प्रक्रिया पर उनके प्रभाव की मात्रा में भी भेद है) और इस समस्या के समाधान के स्वरूप और पद्धतियों में भी भेद है।

यही "ढुलमुल" सामाजिक-वर्गीय संरचना नवोदित राज्यों के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की गत्यात्मकता का आधार है जिनमें वर्गों, समूहों और संतरणकालीन संस्तरों के विभिन्न संयोजन सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष में **परिवर्तनशील** कारकों का विषय-चित्र प्रस्तुत करते हैं।

विकासशील देशों में इन परिवर्तनशीलों में **पेटी बूर्ज्वा** (निम्न पूंजीवादी) भी शामिल हैं, जो ऐसी सामाजिक इकाई है, जो अफ्रेशियाई क्षेत्र की उच्च लाक्षणिकता है और जिसमें सामाजिक शक्तियों के घटकों के व्यापक विविध स्वरूपों का समावेश होता है, यथा, पारम्पारिक और आधुनिक, नागर एवं ग्रामीण निम्न पूंजीवादी वर्ग तथा उससे संलग्न संस्तर। अधिकांश मामलों में, यह (नीचे से) अर्ध पारम्परिक सीमान्त वर्ग से संलग्न होती है और (ऊपर से) बुद्धिजीवी वर्ग और आधुनिक मध्यवर्ती संस्तर से।

निम्न पूंजीवादी वर्ग के ऐसे प्रतिनिधि, जो विकसित पूंजीवादी देशों के लाक्षणिक हैं यथा किसान, फेरी करके माल बेचने वाले, छोटे व्यापारी आदि, विकासशील देशों में केवल अल्पसंख्या में ही होते हैं। इन देशों में निम्न पूंजीवादी वर्ग कमोवेश छोटे-छोटे स्वामियों के वर्गों का समूह होता है। नागर मध्यवर्ती संस्तर, के लोग (क्लर्क, सिविल सर्विस वाले, सेना अधिकारी आदि) और सर्वोपरि बुद्धिजीवी वर्ग और इसके उपलभ्य विद्यार्थीगण महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका अदा करते हैं।

सामूहिक अधिकारी वर्ग (नौकरशाही) का उल्लेख विशेष रूप से करना आवश्यक है, जो नए राजकीय तंत्र की स्थापना के परिणाम स्वरूप

तेज़ी से बढ़ रहा है। भारत में इसकी संख्या एक करोड़ पर पहुँच गई है। और अनेक एशियाई और अफ्रीकी देशों में पिछले पांच वर्षों में इसकी संख्या तिगुनी हो गई है। अलग-अलग देशों में नौकरशाही की समस्या अलग-अलग रूप में सामने आती है। पूंजीवादोन्मुख राज्यों में यह पूंजीपति वर्ग और भू-स्वामियों वाले शासक वर्ग का अंग ही है। समाजवादोन्मुख राज्यों में राजकीय तंत्र का गठन अधिक जटिल और ऊबड़-खाबड़ है। इसमें काम करने वाले लोगों के संस्तर से लिए गये सिविल कर्मचारियों की संख्या अधिक होती है और वह बहुसंरचना वाले समाज के सन्तरणकालीन स्वरूप को काफी बड़े अंश तक प्रतिविम्बित करता है। इन देशों में नौकरशाही मध्यवर्ती संस्तर का अभिन्न अंग है।

अफ्रीका और एशिया के देशों का आधुनिक मध्यवर्ती संस्तर उच्च-कोटि की पंचमेल सामाजिक श्रेणी है। तो भी उनके जन्म और विकास के अध्ययन से उनके सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण की कुछ सामान्य विशिष्टताओं को बतला पाना संभव है। सबसे पहिले तो आधुनिक नरोद-वाद का, विशेषकर इस की क्रान्तिकारी जनवादी प्रवृत्ति का स्थान है। एशिया और अफ्रीका का मध्यवर्ती संस्तर और खासतौर पर बुद्धिजीवी वर्ग, स्वाधीनता, सामाजिक न्याय तथा पूंजीवाद के तिरस्कार के सामान्य राष्ट्रीय आदर्शों के संवाहक और प्रवक्ता कार्य करता है। हम इन संस्तरों की, विशेषरूप से समाजवादोन्मुख देशों में इन संस्तरों की नई, हरावल भूमिका का उल्लेख कर सकते हैं। वास्तव में, अनेक समाजवादोन्मुख देशों में सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर राजकीय सत्ता को **मध्यवर्ती संस्तर का क्रान्तिकारी-प्रगतिशील शासन** कहा जा सकता है, जो कुल मिलकर शोषण न करने वाले वर्गों के हितों को व्यक्त करता है।

इस सिलसिले में यह ध्यान में रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि आज के नरोदवाद में अनेक नई विशिष्टताएं हैं। इस शती के प्रारम्भ में लेनिन ने रूसी नरोदवाद और चीनी सन यात-सेनवाद के विचारों में कुछ समानताएं नोट की थीं और उन्होंने इस सम्भावना की ओर इशारा किया था कि "अनेक एशियाई देशों में" किसी न किसी प्रकार का नरोदवाद उदित हो सकता है। लेनिन की इस प्रस्थापना की पुष्टि अफ्रेशियाई देशों और कुछ

लैटिन अमरीकी देशों में हुई है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में (सन यात-सेन, महात्मा गांधी, सुकार्नो, लाज़ारो कार्देना और अन्य) और विशेषकर राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के वर्तमान चरण में विभिन्न नरोदवादी प्रवृत्तियां (समाजवादी अथवा राष्ट्रवादी स्वरूप के विचारों के साथ विभिन्न संयोजनों में) एशियाई और अफ्रीकी देशों में विभिन्न राजनीतिक झुकावों वाले अनेक प्रख्यात सिद्धान्तशास्त्रियों और राजनीतिज्ञों (फ्रान्ज़ फेनन, मोविडो केटा, लियोपोल्ड सेंगर, जनरल नेविन, ज्यूलियस न्येरेरे, सेकू टूरे, कैनेथ कौंडा, हुआरी बूमेदियेन और दूसरों) में प्रकट हुई हैं।

अलग-अलग अंशों में उनकी सँकल्पनाएं अत्यन्त लाक्षणिक नरोदवाद प्रयोजनों को व्यक्त करती हैं : बूर्ज्वा (पूंजीवादी) सभ्यता की आलोचना, पारम्परिक सामुदायिक संस्थानों के अनुकूलीकरण एवं आधुनिकीकरण के माध्यम से गैर-पूंजीवादी विकास का विचार, किसान वर्ग की ओर झुकाव, बुद्धिजीवी वर्ग की विशेष भूमिका पर बल, आदि आदि।

नरोदवादी विचार की इस पुनरावृत्ति की व्याख्या "देर से", अत्यन्त कमजोर अथवा बिल्कुल "शून्य" के बराबर पूंजीवादी विकास वाले देशों के संतरणकालीन चरित्र द्वारा की जा सकती है। वहाँ पर सामाजिक विकास के दो प्रमुख कारक कार्यरत होते हैं। पहला, पारम्परिक संरचनाओं पर विकसित अथवा "सामान्य से अधिक विकसित" पूंजीवाद द्वारा उत्कट प्रहार, जिसका प्रभाव विध्वंसक होता है और दूसरा, शोषण के पूंजीवाद-पूर्व स्वरूपों के उन्मूलन का सामान्य लोकतांत्रिक कर्त्तव्य, भूमि सम्बन्धी प्रश्न का समाधान आदि, जो प्रभावक रूप में राष्ट्रीय पूंजीवाद के अभ्युदय के लिए आधार प्रशस्त करते हैं। लेकिन, इस उदाहरण में, "वाह्य" और "आन्तरिक" पूंजीवाद एक ही समय में अभिसारी भी होते हैं और कई सन्दर्भों में एक दूसरे के विरोधी भी होते हैं। इसके अलावा, अफ्रेशियाई विश्व में एक नहीं बल्कि कई पूंजीवादी विरचन देखने को मिलते हैं। राष्ट्रीय निजी-उद्यम पूंजीवाद, राष्ट्रीय राजकीय पूंजीवाद, विदेशी इजारेदार पूंजीवाद (जिसमें इसके अन्दर कार्यरत विशिष्ट वर्ग भी सम्मिलित हैं), इसकी अपनी गतिविधि का क्षेत्र और इसका अपना ही विस्तारवाद। इन विरचनों के साथ लघु पैमाने पर जिन्स-उत्पादन भी सम्बद्ध है, जिसमें

कुछ देशों में उत्पादन में लाभपूर्ण ढंग से रोजगार से लगे बहुसंख्य व्यक्ति भी शामिल हैं। इस सबका परिणाम वह अंशात्मक और विरूपित चित्र होता है जो पूंजीवादी वर्ग और सर्वहारावर्ग दोनों ही प्रस्तुत करते हैं तथा जिसमें पारम्परिक और अर्धपारम्परिक संस्तरों की प्रमुखता होती है।

यही सामाजिक-वर्ग संरचना आधुनिक राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियों के जटिल स्वरूप के लिए उत्तरदायी होती है। प्रथम दृष्टि में, पूंजीवादी (बूर्ज्वा) प्रकार की राष्ट्रीय-मुक्ति क्रान्तियां अत्यन्त व्यापक रूप से प्रसरित प्रतीत होती हैं—जिनका परिणाम कभी-कभी तत्काल नहीं, लेकिन अनेक मध्यवर्ती चरणों के माध्यम से राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग के हाथों और आमतौर पर अन्य वर्गों और संस्तरों के साथ संयुक्त रूप से सत्ता के हस्तान्तरण में निकलता है।

पूरब की वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग बहुधा इतना बलशाली नहीं होता कि वह अपना एकछत्र शासन और राष्ट्रीय पूंजीवाद के बेरोकटोक विकास को सुनिश्चित कर सके। इसलिए यह बहुधा सामन्ती तत्वों में, आमतौर पर पूंजीवादी भूमिपतियों में अपने साथी-संघाती और यहाँ तक कि संरक्षक भी ढूंढ लेता है जो धीरे-धीरे पूंजीवादी व्यवहार पद्धतियां अपना लेते हैं। यह तो सर्वथा समझ में आने वाली बात है कि इस प्रकार के मामलों में पूंजीवाद विशिष्ट रूप से रचनात्मक स्वरूपों में, सामन्ती अवशेषों के रमझोल के परिरक्षण के साथ और देहाती क्षेत्रों में शोषण के अर्धसामन्ती स्वरूपों के साथ भी विकसित होता है।

उचित कथन यही होगा कि एशिया और अफ्रीका ने "शुद्ध" रूप में पूंजीवादी (बूर्ज्वा) विकास का अनुभव नहीं किया है। कुल मिलाकर अफ्रेशियाई विश्व में इजारेदारीपूर्व योरुप में उपलब्ध निर्बन्ध प्रतियोगिता प्रकार के शास्त्रीय पूंजीवाद को रोपने के प्रयत्न असफल रहे हैं। इसके सिवा उनका हश्र और कुछ हो भी नहीं हो सकता था। इस प्रकार के पूंजीवाद के जो छोटे-मोटे स्थल कुछ क्षेत्रों में जड़ जमाने में समर्थ हो भी गए हैं वे विदेशी अपवृद्धि ही हैं।

कुछ समय बीत जाने के बाद और क्रांति करने वालों की इच्छा की परवाह किये बिना उपनिवेश-विरोधी क्रांतियों का पूंजीवादी स्वरूप कहीं

अधिक बार अपने आपको **वस्तुगत ढंग से** व्यक्त करता है। इस उदाहरण में क्रांति का स्वरूप न केवल साम्राज्यवाद-विरोधी और सामंतवाद-विरोधी होता है, बल्कि बहुधा ऐसा भी होता है कि वह पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष के काम भी अपने ज़िम्मे ले लेने की कोशिश करता है। नियमतः ऐसा उन देशों में होता है जिनमें राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग कमज़ोर होता है और उसका बहुत बड़ा भाग उपनिवेशवादियों की जी हुज़ूरी करते रहने के कारण कलंकित हो चुका होता है, जबकि उस देश के निवासी एक घटना के रूप में पूंजीवाद से विदेशी, अर्थात् औपनिवेशिक, पूंजी के रूप में ही परिचित होते हैं। इसी स्थिति में क्रांति साम्राज्यवाद, सामंतवाद और स्थानीय विदेशी पूंजीवाद पर आघात करने के साथ-साथ कभी-कभी "स्वयं अपने" पूंजीपतियों को भी चोट पहुंचाता है। परंतु "परंपरागत" (अर्थात्, नियमतः ज़मीदार-सूबेदार) कमज़ोर ऊपरी सतह वाले पूंजीवाद पर प्रहार करके क्रांति राष्ट्रीय पूंजीवाद के व्यापक विकास के लिए, गांव के धनवानों की, शहरों के व्यापारियों की ओर छोटे उद्यमियों की "लोकतांत्रिक पूंजी" को नीचे से उभारने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। यह पूंजीवाद (जो अपने छद्म लोकप्रिय स्वरूप और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक जन-आधार के कारण ऊपरी सतह वाले पूंजीवाद से अधिक खतरनाक होता है) पहले घोषित किये गये सभी पूंजीवाद-विरोधी सिद्धांतों को बड़ी तेज़ी से खोखले शब्दों और लफ्फाज़ी भरे नारों में बदल देता है। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण आजकल के मिस्र में मिलता है, जहां एक दशक के राष्ट्रीय-लोकतांत्रिक शासन (1961-70) के बाद, उस दौर की सभी उपलब्धियों को बड़ी मुस्तैदी के साथ राष्ट्रीय पूंजीवाद के बड़े पैमाने पर विकास के लिए आधार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

लेकिन यह समस्या का केवल एक पहलू है। दूसरा पहलू वह है जो इस समय निम्नलिखित बातों में व्यक्त हो रहा है। मोटे-मोटे तौर पर, विकासशील देशों की आंतरिक स्थिति में दो ही मुख्य विकल्प सामने आते हैं। पहला, राष्ट्रीय मुक्ति की क्रांति के पूंजीवादी लोकतांत्रिक कामों को पूरा करना। जो सामाजिक-आर्थिक सुधार लागू किये जा चुके हैं या लागू किये जा रहे हैं (कृषि-संबंधी रूपांतरण, राजनीतिक लोकतंत्रीकरण,

सामंती संस्थाओं का समाप्त किया जाना, धर्म निरपेक्षीकरण, इत्यादि,) वे **वस्तुगत दृष्टि से** राष्ट्रीय पूंजीवाद के लिए मैदान साफ कर रहे हैं—और व्यवहार से इस बात की पुष्टि होती है। परंपरागत संरचनाओं में पूंजीवादी संबंधों का इस प्रकार का "विलंबित" और, साथ ही, इतना तीव्र अतिक्रमण आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में गंभीर विषमताओं और संकट की परिस्थितियों को जन्म देता है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय पूंजीवाद विश्व मंडी में प्रबल प्रतिस्पर्द्धा और घरेलू मंडी की क्षीण होती हुई क्षमता के बीच जकड़े होने के कारण समाज में रचनात्मक भूमिका के बजाय विनाशकारी भूमिका अदा करता है, वह कृषि के क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक आबादी, शहरों में बेरोज़गारी छोटे उत्पादकों की तबाही और लुम्पेन संस्तरों की वृद्धि जैसी समस्याओं को अधिक उग्र बना देता है। इसलिए, अधिकांश आबादी की **पूंजीवाद-विरोधी मनोवृत्ति** अधिकाधिक बढ़ती जा रही है, जिसका प्रभाव सिद्धांतवेत्ताओं तथा राजनीतिज्ञों की सैद्धांतिक परिकल्पनाओं पर पड़े बिना नहीं रह सकता। जैसा कि मार्क्स ने कहा है: "लोगों के मस्तिष्क हमेशा अदृश्य सूत्रों से उनके शरीर से जुड़े रहते हैं।..."

विश्व समाजवाद और नव-स्वतंत्र देशों का समाजवाद की ओर झुकाव

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों ने पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण की सामान्य नियमितताओं का पता लगाया था, और जीवन का अनुभव उनके औचित्य के नित्य नये प्रमाण प्रस्तुत करता रहता है।

1917 की अक्तूबर क्रांति के बाद के दौर में विकास की कई पूरी-पूरी अवस्थाओं को फलांग कर सामंतवाद या प्रारंभिक पूंजीवाद से सीधे समाजवाद में संक्रमण की संभावना के प्रश्न ने नयी तात्कालिकता धारण कर ली। यह संभावना, जिसे मार्क्स और एंगेल्स ने एक वैज्ञानिक प्रस्थापना के रूप में निरूपित किया था, लेनिन की प्रतिभा की बदौलत अपनी व्यावहारिक पूर्ति के दौरान नये सारतत्त्व से समृद्ध हो गयी है। सोवियत संघ की पहले की पिछड़ी हुई जातियों ने इस "छोटे से रास्ते से" समाजवाद में जो संक्रमण किया है, और मंगोलियाई लोक गणतंत्र का सामंतवाद से समाजवाद में जो आश्चर्य चकित कर देने वाला जो परिवर्तन हुआ है उसने विकास के ग़ैर-पूंजीवादी मार्ग के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा की सार्थकता को सिद्ध कर दिया है। इस ऐतिहासिक अनुभव ने दिखा दिया है कि जो जातियां पहले पिछड़ी हुई थी उनका पूंजीवादी अवस्था में होकर गुजरे बिना समाजवाद में संक्रमण अभिन्नरूप से समाजवादी राष्ट्रों की विश्व बिरादरी के आस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। समाजवादी राष्ट्रों के समर्थन तथा अनुभव पर भरोसा करके ही ये जातियां समाजवादी पथ पर अग्रसर हो सकी हैं और उस पर चलते हुए युगांतरकारी सफलताएं प्राप्त कर सकी हैं।

आजकल की परिस्थितियों में गैर-पूंजीवादी विकास का सिद्धांत और व्यवहार ऐसे नये तत्त्वों से काफी बड़ी हद तक समृद्ध हुए हैं जिनका संबंध

अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में राजनीतिक शक्तियों के संतुलन में निरंतर होने वाले परिवर्तन के साथ भी हैं और इस मार्ग को अपनाने वाले देशों की ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति के विशिष्ट लक्षणों के साथ भी आधुनिक लोकतांत्रिक क्रांतियों के सारतत्त्व को सही-सही समझने के लिए सबसे पहले अफ्रीकी-एशियाई क्रांतिकारी अथवा राष्ट्रीय लोकतंत्र के वर्ग-स्वरूप को जान लेना आवश्यक है।

यहां जो कुछ हो रहा है वह कुछ हद तक इतिहास की पुनरावृत्ति है, हालाँकि एक नये प्रसंग में। दोनों ही उदाहरणों में क्रांतिकारी लोकतंत्र का उदय उस समाज की ऐतिहासिक आवश्यकताओं के फलस्वरूप हुआ था जो तात्कलिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को हल करने केउपाय खोज रहा था।

अपने समय में लेनिन ने रूसी क्रांतिकारी लोकतंत्र के प्रसंग में बताया था। "क्रांतिकारी लोकतंत्र अत्यन्त विविध तत्त्वों का (वर्गगत प्रतिष्ठा तथा वर्गगत हितों की दृष्टि से, जो एक ही बात नहीं है!) संयोजन होता है।" एशियाई तथा अफ्रीकी क्रांतिकारी लोकतंत्र के मूल्यांकन के लिए, जहां नाना प्रकार की सामाजिक-आर्थिक संरचनाएं हैं, लेनिन की यह बात बहुत प्रसंगानुकूल है। इन देशों में क्रांतिकारी लोकतंत्र, अधिकांश हद तक, उत्पत्ति और स्तर दोनों ही की दृष्टि से निम्न-पूंजीवादी होता है। यह सच है कि उसका सामाजिक अवलंब देहातों और शहरों के उन अर्ध-सर्वहारा संस्तरों से बनता है, जिनसे नियमतः सर्वहारा वर्ग बनता है। लेकिन उसकी सबसे गतिवान शक्ति शहरों के मध्यम संस्तर होते हैं—बुद्धिजीवी वर्ग, अफसर लोग, छात्र, आदि। बहुधा उसका नेतृत्व करने वाली आधारभूत शक्ति होती है फ़ौजी या गैर-फ़ौजी बुद्धिजीवी की। याद रखना चाहिये कि लेनिन ने क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों को शहरों के निम्न-पूंजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग और किसान वर्ग का सदस्य बताया था।

सर्वहारा पूर्व समाजवादी प्रवृत्तियों को रूपों में अत्यधिक विविधता की पहले ही से कल्पना करके मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में इस बात पर ज़ोर दिया था कि निम्न-पूंजीवादी समाजवाद को न पूंजीवादी समाजवाद का अंग माना जा सकता है, न सर्वहारा समाजवाद का,

और उन्होंने यह भी बताया था कि विभिन्न परिकल्पनाओं का उद्‌भव प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर रहता है कि स्वयं वह समाज किस हद तक विकसित है।

आजकल के क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के सैद्धांतिक और राजनीतिक मंचों के सामाजिक स्वरूप के समझने के लिए ये प्रस्थापनाएं अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। निश्चय ही, इस प्रकार के नये ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व-पूर्ण कारकों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है जैसे विश्व समाजवादी व्यवस्था का अस्तित्व तथा विकास, विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया की गति में वृद्धि और स्वयं नव-स्वतंत्र देशों में काफ़ी बड़ी मात्रा में होने वाले सामा-जिक परिवर्तन। राष्ट्रो की विश्वव्यापी समाजवादी बिरादरी में मूर्त्त सच्चे समाजवाद का अस्तित्व आधुनिक क्रांतिकारी लोकतंत्र पर, उसकी नीति तथा व्यवहार पर बहुत बड़ा गहरा सकारात्मक प्रभाव डालता है। आज क्रांतिकारी लोकतंत्र की सैद्धांतिक परिकल्पनाओं के निर्माण के लिए और उसकी सैद्धांतिक तथा राजनीतिक परिपक्वता में वृद्धि के लिए गुणात्मक रूप से नयी परिस्थितियां तैयार हो गयी हैं।

विकासशील देशों में जितनी भी गैर-सर्वहारा राजनीतिक प्रवृत्तियां है उनमें से क्रांतिकारी लोकतंत्र अनेक कारणों से मार्क्सवादियों-लेनिन-वादियों का, विश्व कम्युनिस्ट आँदोलन का ध्यान सबसे अधिक आकर्षित करता है।

क्रांतिकारी लोकतंत्र किसी न किसी प्रकार की सामाजिक क्रांति की आवश्यकता को स्वीकार करता है! वह अपने-अपने देशों के लिए विकास के ऐसे प्रगतिशील तरीकों की खोज कर रहा है जो मेहनतकश जनता की आवश्यकताओं के अनुकूल हों। क्रांतिकारी लोकतंत्रवादी अपने-अपने देशों में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति की अगुवाई कर रहे हैं, जो राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांति का सर्वोच्च रूप होने के नाते सामाजिक काम पूरे कर रही है और उसे सामाजिक-मुक्ति का स्वरूप प्रदान कर रही है और जो कुछ परि-स्थितियों में समाजवादी सामाजिक संबंधों में क्रांतिकारी संक्रमण की प्रस्तावना बन सकती है। व्यवहार में संक्रमण की यह प्रक्रिया, जो बहुत लंबी हो सकती है, आज गैर-पूंजीवाद विकास या समाजवाद की ओर

झुकाव का रूप धारण कर लेती है।

इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकासशील देशों में क्रांतिकारी लोकतांत्रिक प्रवृत्ति, सारतः जिसका स्वरूप मार्क्सवाद से पहले वाला स्वरूप है, आगे चलकर उन देशों में जहां अभी तक मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियां नहीं हैं इस प्रकार की पार्टी का प्रारंभिक रूप बन जायें, या जहां इस प्रकार की पार्टी पहले से मौजूद है वहां कुछ शर्तों पर उसमें विलीन हो जायें। स्वाभाविक बात है कि आज पहले से उन ठोस परिस्थितियों की कल्पना कर सकना कठिन है जिनमें इस प्रकार की ऐतिहासिक संभावना उत्पन्न हो सकतीं है।

अंततः, वे राज्य जिनमें क्राँतिकारी लोकतांत्रिक शासन किसी न किसी रूप में समाजवाद की ओर झुकाव का मागं अपना रहे हैं, राष्ट्रीय-मुक्ति आंदोलन का हरावल दस्ता हैं और विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया की महत्वपूर्ण राजनीतिक संचित शक्ति हैं।

क्रांतिकारी लोकतांत्रिक पार्टियों के नीति संबंधी दस्तावेजों और उनकी नीतियों का विश्लेषण करने से आधुनिक क्रांतिकारी लौकतंत्र की निम्नलिखित कसौटियों को निर्धारित करना—निश्चय ही, कुछ संकोचों के साथ संभव हो जाता है।

पहले, पूंजीवाद की आलोचना तथा उसे अस्वीकार करना और उसके विकास के टालने या सीमित करने का प्रयत्न।

दूसरे. समाजवाद को लक्ष्य घोषित करना और इस प्रकार के समाजवादी सिद्धांतों को स्वीकार करना जैसे हर प्रकार के शोषण का अंत, उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक स्वामित्व, काम के अनुसार वितरण, और शहरों तथा देहातों के छोटे उत्पादकों को सहकारी संस्थाओं में संगठित करना, इत्यादि।

तीसरे सामाजिक आर्थिक और आंशिक रूप से राजनीतिक उपायों को सुधारवादी ढंग से नहीं बल्कि क्रांतिकारी ढंग से क्रियान्वित करना जिसकी अभिव्यक्ति साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद की स्थितियों को मिटाने, राष्ट्रीय पूंजीवाद की स्थितियों पर अंकुश लगाने, और लोकतांत्रिक सार्वजनिक क्षेत्र की स्थापना के माध्यम से अर्थतंत्र के आमूल पुनर्गठन के रूप में

होती है।

चौथे, ऐसे सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक उपायों को क्रियान्वित करना जो श्रमिक जनता के हितों के अनुकूल हों और उनके सामने समाजवादी परिपेक्ष्य का मार्ग उन्मुक्त कर सकते हैं। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो क्रांतिकारी लोकतांत्रिक सुधार होते हैं उनके कारण सामाजिक ढांचे में, समाज-व्यवस्था में और वर्ग-शक्तियों के पारस्परिक संबंध में श्रमिक जनता के पक्ष में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं।

पांचवे, विदेश नीति से संबंधित अनेक प्रमुख समस्याओं पर क्रांतिकारी लोकतंत्र विश्व समाजवादी व्यवस्था का समर्थन करता है, और इस प्रकार साम्राज्यवाद के विरुद्ध, अंतरराष्ट्रीय तनाव में मूलगामी और स्थायी कमी के लिए, लोकतंत्र तथा सामाजिक प्रगति के लिए चलने वाले संघर्ष के सामान्य क्रांतिकारी मोर्चे को मजबूत करता है।

फिर भी आधुनिक क्रांतिकारी लोकतंत्र के सिद्धांत तथा उसका व्यवहार कमजोरियों, असंगतियों और अंतविरोधों से मुक्त नहीं हैं।

सबसे पहली बात तो यह कि क्रांतिकारी लोकतंत्र मुख्यतः उन गैर-सर्वहारा संस्तरों की आकांक्षाओं तथा विचारों को प्रतिबिंबित करता है, जिनमें लेनिन ने किसानों, निम्न-पूंजीपति वर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग को शामिल किया था। अधिक ठोस शब्दों में कहा जाये तो इससे अभिप्राय है किसानों का व्यापक समुदाय, शिल्पकार तथा अन्य छोटे उत्पादक, व्यापारी तथा अन्य छोटे स्वाभित्वाधिकारी, निचले तथा मध्यम संस्तरों के अफसर हैं, छात्र, फौजी अफसर, वकील डाक्टर, इत्यादि।

जैसा कि मार्क्स ने कहा था, शहरों तथा देहातों के वे गैर-सर्वहारा और अर्ध-सर्वहारा संस्तर जिनकी स्थिति सर्वहारा वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के बीच में होती है, वे साकार ऐसे लोग होते हैं "जो एक ही समय में पूंजीपति भी होते हैं और जनता के आदमी भी।"

इस बीच के शहरी संस्तर में राजनीतिक दृष्टि से एक प्रमुख स्थान बुद्धिजीवी वर्ग का होता है। समाजवाद की ओर झुकाव रखने वाले देशों के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में इस वर्ग की भूमिका अधिकाधिक बड़ी

होती जा रही है। अपनी शिक्षा, सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों के क्षेत्र में अपने अनुभव और राज्यतंत्र, पार्टियों तथा सेना के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों की बदौलत इस वर्ग को अन्य स्तरों की अपेक्षा अनेक महत्वपूर्ण सुविधाएं प्राप्त रहती हैं। बुद्धिजीवी वर्ग में से ही प्रमुख क्रांतिकारी लोकतांत्रिक नेता निकले हैं,जो समाजवादी झुकाव रखने वाले राज्यों की सरकारों तथा पार्टियों के प्रधान हैं।

निम्न-पूंजीपति वर्ग, जो पूरब के देशों के राजनीतिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति बनकर उभरा है, राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही पंचमेल हैं। समाजवादी झुकाव रखने वाले देशों में जैसे-जैसे क्रांतिकारी प्रक्रियाएं गहरी होती जाती हैं, वैसे ही वैसे निम्न-पूंजीपति वर्ग के अंदर राजनीतिक परिवर्तन होते जाते हैं, अंतरविरोध बढ़ते जाते हैं, और एक ऐसा संघर्ष उभरता है जिसके दौरान कुछ शक्तियां राजनीतिक दृष्टि से एकताबद्ध होती जाती हैं और कुछ एक-दूसरे से दूर हटती जाती हैं। व्यापक निम्न-पूंजीपति वर्ग का प्रत्येक सामाजिक स्तर सामाजिक आंदोलन में स्वय अपनी आकांक्षाएं लेकर आता है, जिसके फलस्वरूप देश की राजनीतिक स्थिति में अस्थिरता आती है। लेनिन ने बताया है कि निम्न-पूंजीवादी लोकतंत्र में पूंजीवादी लोकतंत्र की तुलना में कम समरूपता होती है।

चूंकि छोटे पैमाने पर बिकाऊ माल के उत्पादन की व्यवस्था के रूपांतरण में काफी समय लगता है और इस काम को किसी न किसी प्रकार की सहकारिता तथा उद्योगीकरण के बिना पूरा नहीं किया जा सकता, इसलिए समाजवादी झुकाव रखने वाले देशों में निम्न-पूंजीवादी स्वत:स्फूर्ति का दबाव एक महत्वपूर्ण कारक बना रहता है, जो क्रांतिकारी लोकतंत्र के सिद्धांत तथा व्यवहार के कई पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

अपने वर्ग-आधार की सामाजिक भावनाओं को व्यक्त करते हुए क्रांतिकारी लोकतंत्र का स्वरूप सभी लाक्षणिक विशेषताओं के साथ निम्न-पूंजीवादी बना रहता है, या यह कहना अधिक उचित होगा कि उसका स्वरूप कृषक बना रहता है। दूसरे शब्दों में, वह निम्न-पूंजीवादी आंदोलन होता है, क्रांतिकारी आंदोलन नहीं। ठीक यही कारण है कि क्रांतिकारी लोकतंत्र पूंजीवाद की आलोचना सर्वहारा दृष्टिकोण से न करके निम्न-पूंजीवादी

दृष्टिकोण से करता है। यही उसकी मुख्य कमजोरी है। इसके अतिरिक्त यह भी नहीं भूलना चाहिये कि पूंजीवाद के विचार की आलोचना और धीरे-धीरे पूंजीवाद को मिटा देने के लिए व्यावहारिक कार्रहिवायों के वीच बहुत बड़ा, बल्कि कहना चाहिये, बुनियादी अंतर है। मार्क्स ने इस संबंध में लिखा था कि "निजी संपत्ति के **विचार** को मिटा देने के लिए तो साम्यवाद का **विचार** ही काफी है। लेकिन वास्तविक निजी संपत्ति को मिटाने के लिए वास्तविक कम्युनिस्ट कार्यवाही की ज़रूरत होती है।"

जैसा कि लेनिन ने बताया था, समाजवादी झुकाव रखने वाले देशों की वैचारिक तथा राजनीतिक स्थिति की एक विलक्षणता यह है कि सक्रिय क्रांतिकारी संघर्ष में शामिल होने वाले निम्न-पूंजीपति वर्ग के कुछ हिस्से वस्तुगत दृष्टि से तो पूंजीवाद पर आक्रमण करेंगे पर उतने ही अनिवार्य रूप से वे इस आंदोलन में अपने दुराग्रह, अपनी प्रतिक्रियावादी कपोल कल्पनाएँ, अपनी कमजोरियां और अपनी गलतियां भी लायेंगे।

निम्न-पूंजीवादी लोकतांत्रिक बुद्धिजीवी वर्ग की (जो आज क्रांतिकारी लोकतंत्र का बहुत बड़ा हिस्सा है) अस्थिर, अंतरविरोधी स्थिति की ओर संकेत करते हुए लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि यह अस्थिरता और अंतरविरोध उसके वीच विविध सकर विचारों के व्यापक प्रसार, परस्पर विरोधी सिद्धांतों तथा विचारों के संगम, और वर्ग-विरोधों को छिपाने के प्रयत्न के रूप में व्यक्त होते हैं।

यही कारण है कि क्रांतिकारी लोकतांत्रिक शासनों के नीति-संबंधी दस्तावेज़ों में हमें न केवल वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों की गहरी छाप का वल्कि विभिन्न स्थानीय तथा पाश्चात्य अवैज्ञानिक वैचारिक प्रवृत्तियों के प्रभाव का भी प्रमाण मिलता है जैसे सामाजिक चेतना के एक स्थायी रूप के तौर पर धार्मिक आदर्शवादी विचारधारा, नैतिक समाजवाद, जिसे बहुधा वैज्ञानिक समाजवाद की टक्कर पर ला खड़ा किया जाता है, तर्क बुद्धिवाद जिसका लक्षण होता है तर्क में संपूर्ण आस्था और अनुभव तथा वैज्ञानिक सामान्यीकरण के महत्व से इंकार करना, व्यावहारिकतावाद, जो सत्य के मूल्य को किसी स्थिति विशेष में उसकी व्याबहारिक उपयोगिता से निर्धारित करता है; नृविज्ञानी दर्शन, जो राजनीति तथा वर्ग-संघर्ष से सर्वथा असंबं-

धित अमूर्त्त मानव को अपना मूलमंत्र मानता है और मनुष्य के मुख्य लक्षण की, उसके सामाजिक सार-तत्त्व की उपेक्षा करता है; भ्रष्ट समाजशास्त्रीयता जो सामाजिक प्रक्रिया की कठिनाइयों तथा जटिलताओं को आवश्यकता से अधिक सरल रूप में प्रस्तुत करती है।

बहुधा ऐसा होता है कि क्रान्तिकारी लोकतंत्र सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी स्वरूप के बारे में न केवल शंका प्रकट करता है बल्कि उससे सर्वथा इंकार करता है और कृषक वर्ग की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर आँकता है।

क्रान्तिकारी लोकतंत्रवादियों के राजनीतिक विचार और विश्व के बारे में उनके विचार विभिन्न कालावधियों तक क्रियाशील रहने वाले अन्य कारकों से भी प्रभावित होते हैं। यहाँ पर दो विश्व व्यवस्थाओं के बीच चलने वाले वैचारिक संघर्ष से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के उलझे हुए समूह का भी उल्लेख कर दिया जाना चाहिये। विकासशील देशों में समाजवाद तथा पूंजीवाद के ऐतिहासिक टकराव की संकेंद्रित अभिव्यक्ति सामाजिक-विकास के दो तरीकों के बीच होने वाले संघर्ष के रूप में होती है। इसके अतिरिक्त, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के लेनिनवाद विरोधी रवैये को, जो सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और पूरे कम्युनिस्ट आंदोलन के विरुद्ध वैचारिक तथा राजनीतिक संघर्ष चला रही है, पूर्वी देशों की कुछ कम्युनिस्ट पार्टियों की संकीर्णतावादी गलतियों को, और मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के अन्य विकृत रूपों तथा त्रुटिपूर्ण व्यवहार को क्रांतिकारी लोकतंत्रवादी बहुधा गलती से सच्चा वैज्ञानिक समाजवाद समझ बैठते हैं और अपनी पाँतों में कुछ वैचारिक तथा राजनीतिक उलझाव पैदा करते हैं।

विभिन्न परिकल्पनाओं का आपस में यह गुम्फन और उनका जटिल संश्लेषण आजकल के क्रांतिकारी लोकतंत्रवाद की समस्त वैचारिक तथा राजनीतिक स्थिति की संकलनवृत्ति को निर्धारित करते हैं, जो उसके तंत्र की कार्य-पद्धति के लगभग सभी प्रकट रूपों में अभिव्यक्त होती है।

परंतु इससे भी गंभीर बातें हैं : क्रांतिकारी लोकतांत्रिक शासनसत्ताओं तथा पार्टियों की नीति में किंचित अस्थिरता, विशेष रूप से उन जटिल आंतरिक तथा वैदेशिक राजनीतिक परिस्थितियों में जब साम्राज्यवादी शक्तियों का दबाव नियमतः बढ़ जाता है; और प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद

की ओर और कभी-कभी साम्यवाद-विरोध तथा सोवियत-विरोध की ओर खतरनाक झुकाव दिखायी देता है; इससे क्रांति को गहराई प्रदान करने की संभावनाएँ अनिवार्य रूप से सीमित हो जाती हैं या उसकी उपलब्धियां तक खतरे में पड़ जाती हैं।

ऊपर बताये गये कारणों से क्रांतिकारी लोकतंत्र में जो असंगतिपूर्ण तथा अंतरविरोधपूर्ण स्वरूप उत्पन्न होता है उसको सामान्य ढंग के अनेक उदाहरणों से परिलक्षित किया जा सकता है।

जन-साधारण की राजनीतिक गतिविधियों में वृद्धि से डरकर कुछ क्रांतिकारी लोकतांत्रिक-नेता आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को हल करने में जन-साधारण को प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर देने में पर्याप्त दृढ़ता का परिचय नहीं देते हैं जिसका परिणाम अनिवार्य रूप से यह होता है कि राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति की ऊपरी ढाँचे की संस्थाओं की स्थापना का काम पिछड़ जाता है। यही कारण है कि समाजवादी झुकाव रखनेवाले देशों में जो क्रांतिकारी लोकतांत्रिक पार्टियां हैं वे अभी तक जनता के क्रांतिकारी नेतृत्व के सच्चे राजनीतिक साधन नहीं बन पायी हैं। राजनीतिक जीवन में जनता के खिचकर आने की प्रक्रिया बहुत धीमी है और यही हाल श्रमिक वर्ग तथा उसकी पार्टी के सहयोग से साम्राज्यवाद-विरोधी, सामंतवाद-विरोधी तथा पूंजीवाद-विरोधी शक्तियों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया का है, अर्थात् एक ऐसे राजनीतिक गुट के निर्माण की प्रक्रिया जो मूलगामी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूपांतरों के लिए मैदान में उतरे और जिसमें आंतरिक तथा विदेशी प्रतिक्रियावादियों से टक्कर लेने की क्षमता हो। समाजवाद की विजय के लिए प्रयत्नशील सभी क्रांतिकारी शक्तियों को एक साथ लाने की नीति का अभी तक काफी सुसंगत रूप से पालन नहीं किया जा रहा है, हालांकि अफ्रीकी-एशियाई देशों की जनता के संघर्ष का अनुभव बताता है कि क्रांतिकारी मुक्तिकारी प्रक्रिया को गहराई प्रदान करने और क्रांतिकारी लोकतांत्रिक सत्ता को सुसंगत रूप से सुदृढ़ बनाने की संभावनाएँ सीधे-सीधे इस बात पर निर्भर होती हैं कि व्यापक जन-साधारण किस हद तक क्रांति में भाग लेते हैं और किस हद तक सभी वामपंथी लोकतांत्रिक शक्तियों में एकता है।

कभी-कभी क्रांतिकारी लोकतांत्रिक नेता वामपंथी शक्तियों के संयुक्त मोर्चे से कम्युनिस्टों को बाहर रखने की कोशिश करते हैं और इस प्रकार क्रांति के सामाजिक-राजनीतिक आधार को संकीर्ण बना देते हैं। क्रांतिकारी लोकतांत्रिक नेता बहुधा एक ही पार्टी के शासन का जो नारा देते हैं वह उन देशों में शक्तियों के वास्तविक वितरण को प्रतिबिंबित नहीं करता, जहां मेहनतकश वर्ग प्रमुख राजनीतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और उसकी राजनीतिक परंपराएँ होती हैं और कभी-कभी कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में उसका हरावल दस्ता भी होता है। जैसा कि अनुभव बताता है, कम्युनिस्ट पार्टियों का अस्तित्व उन जगहों में भी, जहाँ सर्वहारा आंदोलन कमज़ोर होता है, पूंजीवाद-विरोधी संघर्ष के मोर्चे को काफी मज़बूत बनाता है।

अंततः, यहाँ हम एक ऐसा उदाहरण दे रहे हैं जिसका संबंध कुछ क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों की विदेश नीति से संबंधित प्रवृत्ति से है। वे दो "विश्व गुटों" के प्रति "समानता" के रवैये की "संतुलित" विदेश नीति का पालन करते हैं। यह भ्रांत धारणा है जिसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है। यह वर्गगत अंतर्वस्तु से सर्वथा वंचित है और दोनों व्यवस्थाओं के सामाजिक सार-तत्त्व की, समाजवाद की दिशा में विकास की सामान्य नियमितताओं की और सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों की विदेश नीति के अंतरराष्ट्रवादी स्वरूप की उपेक्षा करता है।

इससे यह स्पष्ट है कि आजकल के क्रांतिकारी लोकतंत्र के वे समाजवादी सिद्धांत तथा व्यवहार भी, जिनका उद्देश्य साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद की स्थितियों को नष्ट करना है और जो पूंजीवाद-विरोध की भावना से ओत-प्रोत हैं, गंभीर वैचारिक तथा राजनीतिक कमज़ोरियों से मुक्त नहीं हैं। हम इसे इस महत्वपूर्ण और द्वंद्वात्मक दृष्टि से विरोधपूर्ण घटना का सार-तत्त्व मानते हैं, जिसके विशिष्ट लक्षण हैं अत्यधिक जटिल परस्पर-क्रिया, परस्पर निर्भरता, और सामाजिक तथा वैचारिक ढाँचे के विभिन्न संघटकों का एक-दूसरे को अवलंब प्रदान करने वाला प्रभाव। यह कहा जा सकता है कि पहली बात तो यह कि समकालीन क्रांतिकारी लोकतंत्र के सिद्धांत तथा उसका व्यवहार प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से उसके सामाजिक

स्रोत से जुड़े हुए हैं; दूसरे, वे समाजवादी झुकाव रखने वाले देशों में जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा वैचारिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं; और तीसरे, वे अनेक बाहरी कारकों से प्रभावित होते हैं।

इस समय भी जो राजनीतिक अनुभव उपलब्ध है वह इसी निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि एक देश से दूसरे देश में क्रांतिकारी लोकतंत्र का रूप बदलता रहता है, और यह इस पर निर्भर होता है कि किसी देश विशेष में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति के प्रगति किस हद तक हुई है।

यदि क्रांति की अगुवाई अडिग रूप से क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के हाथों में है तो उस देश का विकास गैर-पूंजीवादी मार्ग पर होता है। ज़ाहिर है कि इसका मतलब यह नहीं हैं कि उसके मार्ग में कोई कठिनाइयाँ आती ही नहीं। इसके उदाहरण हैं बर्मा (1962 से), इराक (1969 से), कांगो का लोक गणराज्य, यमन का जन लोकतांत्रिक गणराज्य, जहाँ क्रांतिकारी लोकतंत्र का वामपंथी पक्ष मज़बूत हो रहा है। अंगोला, मोजांबीक और इथिओपिया में राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांति अपनी राष्ट्रीय लोकतांत्रिक अवस्था में पहुँच गयी है।

यदि सत्ता ऐसे क्रांतिकारी समूहों के हाथ में होती है जिनमें अभी तक क्रांतिकारी-राष्ट्रवादियों और सुसंगत क्राँतिकारी लोकतंत्रवादियों का कोई विभेद पैदा नहीं हुआ है, या जहाँ उनके बीच अभी तक संतुलन बना हुआ है, वहाँ राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति का एक "मध्यवर्ती" उत्पन्न होता है (मध्यवर्ती इस अर्थ में कि वह समाजवादी झुकाव और पूंजीवादी पतन के बीच में होता है), जिसका परिणाम यह होता है कि अर्थतंत्र पर राज्य-सत्ता का अति कठोर नियंत्रण स्थापित हो जाता है, **सामान्य राष्ट्रीय** उद्देश्यों पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाने लगता है, सभी वर्ग-हितों को उनके अधीन कर देने की कोशिश की जाती है और विदेशी नीति में बेहद स्पष्ट तटस्थता आ जाती है।

यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिये कि क्रांति के सामाजिक पहलू में गहराई आने के साथ-साथ क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के बीच विभेद भी अधिक उग्र होते जायेंगे।

राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों के लक्षण होते हैं अस्थिरता और उल्टी दिशा में मुड़ जाने की संभावना। यही बात कि वे संक्रमणकालीन होते हैं और उनके दक्षिणपंथ या वामपंथ की ओर मुड़ जाने की संभावना रहती है, उनके "रूपांतरणों" की गतिशीलता को, उनकी सामाजिक दिशा में किसी भी ओर बहुत दूर तक बदल जाने की प्रवृत्ति को, वर्ग-शक्तियों के पारस्परिक संबंध में और नेतृत्व के स्वरूप में तनिक भी परिवर्तन के प्रति उनकी अत्यधिक संवेदनशीलता को निर्धारित करती है। इसके उदाहरण उन देशों में मिलते हैं जहां राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति पराजित हो चुकी है।

इसके साथ ही यह बात भी किसी से छिपी नहीं रह सकती कि जहाँ तक क्रान्तिकारी लोकतंत्र का सम्बन्ध है, गैर-सर्वहारा श्रमिक जन-साधारण के व्यापक हिस्सों पर वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों के बढ़ते हुए प्रभाव के अंतर्गत ऐतिहासिक घटना होती है, उसके वामपंथ की ओर खिसकते जाने की ओर जटिल तथा विरोधपूर्ण प्रक्रिया। हमारे दौर के सामाजिक आचरण में इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि अपने निर्दिष्ट लक्षणों को निर्धारित करते समय श्रमिक जनता तथा उसकी अग्रणी राजनीतिक शक्तियाँ इन विचारों से कतराकर आगे नहीं बढ़ सकतीं।

मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों का यह मत है कि गैर-सर्वहारा श्रमिक जनता के समाजवाद के पक्ष में चले जाने के लिये बहुत लम्बी अवधि आवश्यक होती है। यह संक्रमण न केवल जन-साधारण के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत से परिचित होने के फलस्वरूप होगा, बल्कि तीव्र वर्ग-संघर्ष के दौरान होगा। लेनिन ने लिखा था कि "किसी मार्क्सवादीके लिए यह सोचना सबसे बड़ी और सबसे भयंकर भूल होगी कि कोटिसंख्यक जनता (विशेष रूप से किसान और शिल्पकार), जिसे आधुनिक समाज ने अंधकार, अज्ञान और अंधविश्वास के गर्त्त में ढकेल रखा है, केवल मार्क्सवादी शिक्षा की सीधी लकीर पर चलकर ही अपने को इस अंधकार से छुटकारा दिला सकती है।"

क्रांतिकारी लोकतंत्र द्वारा,या कम से कम उसके अधिक उन्नत हिस्सों द्वारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद का समर्थन, उसका अलग-अलग सिद्धांतों तथा

कार्यनीति-संबंध नारों के उपयोग से बढ़कर वैज्ञनिक साम्यवाद को एक सुगठित सिद्धांत के रूप में स्वीकार करने की स्थिति में पहुंचने की प्रक्रिया जटिल परिस्थितियों में संपन्न होती है। इसमें गहरे आंतरिक विरोध निहित रहते हैं, इसका अर्थ होता है अनेक पुरानी धारणाओं को बदलना, क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों द्वारा जड़ भ्रमों, पितृसत्तात्मक परंपराओं और अकसर कम्युनिस्ट-विरोधी दुराग्रहों का परित्याग। यह ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य जटिल प्रक्रिया मार्क्स के इस विचार की पुष्टि करती है कि "निम्न-पूंजीपति वर्ग आगे आनेवाली सभी सामाजिक क्रांतियों का अभिन्न अंग होगा।"

आज अनेक आधारभूत कारक ऐसे हैं जो इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं: वर्ग-संघर्ष का राजनीतिक तर्क और स्वयं क्रांतिकारी व्यवहार का प्रभाव, सर्वहारा तथा अर्ध-सर्वहारा जन-साधारण की राजनीतिक चेतना का तीव्र गति से विकास; समान उद्देश्यों के लिए काम करने में प्रगतिशील राष्ट्रीय मोर्चों की परिधि में कम्युनिस्टों के साथ क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों का सहयोग; क्रांतिकारी लोकतंत्र के सिद्धांतवेत्ताओं का मार्क्सवाद-लेनिनवाद को एक विज्ञान के रूप में धीरे-धीरे आत्मसात करना; समाजवादी झुकाव रखने दाले देशों का विश्व समाजवादी व्यवस्था के साथ घनिष्ठ सहयोग; सत्ताधारी कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ क्रांतिकारी लोकतांत्रिक पार्टियों से राजनीतिक संबंध।

इस प्रसंग में कम्युनिस्ट और क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के पारस्परिक संबंधों का महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। साम्राज्यवाद के विरुद्ध, साम्राज्यवाद द्वारा आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से गुलाम बनाये जाने के नये रूपों के विरुद्ध, शांति, लोकतंत्र तथा सामाजिक प्रगति के लिए सभी का मिला-जुला संघर्ष उन्हें एक-दूसरे के साथ लाता है, परन्तु अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण वैचारिक तथा राजनीतिक प्रश्नों पर उनमें मतभेद रहते हैं, जैसे सामाजिक विकास में वर्ग-संघर्ष तथा वर्गों की भूमिका; राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांतियों के तरीके तथा अवस्थाएँ; इन विभिन्न अवस्थाओं में सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका, आधार और ऊपरी ढांचे का पारस्परिक संबंध और क्रांति की ऊपरी ढांचे वाली संस्थाओं का महत्व; आर्थिक तथा

राजनीतिक समस्या को हल करने में व्यापक जन-साधारण का सहयोग प्राप्त करने के तरीके तथा रूप, इत्यादि। इस प्रश्न की द्वंद्वात्मकता यह है कि सर्वहारा विचारधारा और निम्न-पूंजीवादी लोकतंत्र के विश्व दृष्टिकोण के पारस्परिक संबंधों का विशिष्ट लक्षण यह होता है कि कुछ प्रश्नों पर उनमें सहमति रहती है और कुछ अन्य प्रश्नों पर मतभेद।

आजकल के क्रांतिकारी लोकतंत्र की समाजवादी परिकल्पनाओं तथा व्यावहारिक गतिविधियों का कुल मिलाकर जो प्रगतिशील स्वरूप है उसे स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि उसकी कमजोरियों के प्रति आलोचनात्मक रवैया न अपनाया जाये। मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसके विरोधपूर्ण तथा असंगतिपूर्ण स्वरूप को देखते हैं, उसके कारणों तथा सामाजिक स्रोतों को समझते हैं और क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के सामने जो कठिनाइयां हैं उन्हें ध्यान में रखते हैं। इन कमजोरियों को दूर करने के लिए उन्हें सामने लाना आवश्यक है, और इससे राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांतियों में प्रगतिशील प्रक्रियाओं को बढ़ावा मिलेगा। क्रांतिकारी लोकतंत्रवादी अभी उस मार्ग के आरंभ में ही हैं जो उन्हें ले जाकर मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत से जोड़ती है, और यह बात विदित है कि द्वंद्वात्मक भौतिकवादी विचारों के निर्माण के लिये बहुत लंबे समय की आवश्यकता होती है। क्रांतिकारी लोकतंत्र की परिसीमाओं तथा कमज़ोरियों की ओर संकेत करके मार्क्सवादी-लेनिनवादी राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों के सफल विकास में, और अंततोगत्वा उनके नेताओं की कार्य-कुशलता को बढ़ाने में योग देते हैं।

आगे बतायी गयी बात पर जोर देना आवश्यक है। क्रांतिकारी लोकतंत्र की उन परिसीमाओं के बावजूद जो इतिहास की गति के साथ निर्धारित होती हैं, यह बात सिद्धांत की दृष्टि से गलत और राजनीतिक दृष्टि से अदूरदर्शिता की बात होगी कि कुल मिलाकर उसकी जो प्रगतिशील दिशा है उसे न देखा जाये, कि क्रांतिकारी लोकतंत्र और उसकी परिकल्पनाओं की सकारात्मक भूमिका की उस समय उपेक्षा की जाये जब वे महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर ले जाने वाले सामाजिक-आर्थिक तथा अन्य रूपांतरों को क्रियान्वित करने को ठोस रूप देने में सहायक हों, केवल इसलिए कि वे हमेशा आम सैद्धांतिक योजनाओं तथा धारणाओं से मेल नहीं खाते।

अपने तमाम अंतर्विरोधों के वावजूद क्रांतिकारी लोकतंत्र राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांतियों को गहराई तथा विस्तार प्रदान करना, समाजवादी संबंधों में क्रांतिकारी संक्रमण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा करना संभव वनाता है, विशेष रूप से इस वात को ध्यान में रखते हुए कि एशिया तथा अफ्रीका के अधिकांश देशों में समाजवादी रूपांतरणों में सीधे संक्रमण के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ अभी तक मौजूद नहीं हैं। इस संवंध में लेनिन की सलाह को मानना आवश्यक है : "....हमें यह समझना चाहिये कि **पूंजीवाद से पहले के** संवंधों से समाजवाद में संक्रमण के लिए कौन-से **मध्यवर्ती** रास्ते, तरीके, उपाय तथा साधन आवश्यक हैं।"

निस्संदेह, यदि हम क्रांतिकारी लोकतंत्र पर वर्तमान क्रांतिकारी प्रक्रिया के व्यापक ऐतिहासिक प्रसंग में दृष्टि डालें तो हम देखगें कि इस संक्रमण के रूपों की खोज जारी है। यही कारण है कि क्राँतिकारी लोकतंत्र को समाजवादी देशों, अंतरराष्ट्रीय मज़दूर वर्ग और मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों का सक्रिय समर्थन प्राप्त है।

इसीलिए मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों और क्रांतिकारी लोकतंत्र वादी पार्टियों तथा आंदोलनों के बीच निकट संपर्क तथा सहयोग महत्वपूर्ण है। जैसे कि व्यावहारिक अनुभव से पता चलता है, इस प्रकार के संवंध स्थापित करना आसान काम नहीं है; इसके लिए दोनों पक्षों की ओर से वहुत अधिक राजनीतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है। मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों तथा क्रातिकारी लोकतंत्रवादियों के बीच सहयोग के सैद्धांतिक तथा कार्यनीति-संबंधी पहलू एक विल्कुल ही नयी समस्या हैं। इस प्रकार के सहयोग को अभी तक समय की कसौटी पर काफी हद तक परखा नहीं जा सका है और इस संवंध में वहुत कुछ क्रांतिकारी आचरण के सहारे चलना होगा। नव-स्वतंत्र देशों की जनता के हित में, राजनीतिक आंदोलन का तर्क स्वयं ही इस प्रकार के सहयोग के मार्ग में आने वाली सारी वाधाओं को दूर कर सकता है और कर देगा।

यह कोई संयोग की बात नहीं है कि समाजवादी झुकाव रखने वाले अनेक देशों में प्रगतिशील शक्तियों की एकता की समस्या का रूप कम्युनिस्टों तथा क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के पारस्परिक संवंधों से ही निर्धा-

रित होता है। इन देशों में इस बात की वास्तविक संभावना मौजूद है कि राष्ट्रीय देशभक्त शक्तियाँ एक ही प्रगतिशील मोर्चे में एकतावद्ध हो जायें, जैसा कि, उदाहरण के लिए, सीरिया तथा इराक में हुआ है। सामाजिक प्रगति के लिए कम्युनिस्ट तथा क्रांतिकारी लोकतांत्रिक शक्तियों की एकता तथा संयुक्त कार्यवाही के विभिन्न रूपों से अपार संभावनाओं के द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार के सहयोग का अभाव क्रांतिकारी शक्तियों को कमज़ोर कर देता हैं तथा उनमें फूट डाल देता है, और इस प्रकार साम्राज्यवाद के हाथों में खेलता है।

विकास का गैर-पूंजीवादी मार्ग समाजवाद के लिए प्रयत्नशील सभी राजनीतिक शक्तियों की एकता को नितांत आवश्यक बना देता है। केवल यह एकता ही श्रमिक जनता के सचेतन सृजनात्मक काम को संभव बना सकती है, जो राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों को सफल परिणति तक पहुंचाने के लिए और समाजवादी समाज के निर्माण की परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए अपरिहार्य है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट आंदोलन क्रांतिकारी लोकतांत्रिक पार्टियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने तथा उसे व्यापक बनाने की ओर बहुत अधिक ध्यान देती हैं। अपनी मीटिंगों में इन पार्टियों के प्रतिनिधि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास और पार्टी के निर्माण के क्षेत्रों में अपने अनुभव का आदान-प्रदान करते हैं, आगे चलकर और अधिक पारस्परिक सहयोग की संभावनाओं पर विचार-विमर्श करते हैं, और समसामयिक अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विनिमय करते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक, संगठनात्मक तथा वैचारिक कार्य से परिचित होने से क्रांतिकारी लोकतांत्रिक पार्टियों को बहुत सहायता मिलती है, जो इस अनुभव से ऐसी बातें ग्रहण कर सकती हैं जिन्हें वे अपने देशों के लिए सार्थक समझें। ये संबंध, जो विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन तथा क्रांतिकारी लोकतंत्र के बीच राजनीतिक एकबद्धता का मूलतः नया रूप हैं, क्रांतिकारी लोकतंत्र पर समाजवादी सिद्धांत तथा व्यवहार के प्रभाव को मज़बूत बनाते हैं और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की समाजवादी प्रवृत्तियों को सुदृढ़ करते हैं।

विकासशील देशों में जो वैचारिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाएं चल रही हैं उनसे पता चलता है कि समाजवादी विचार न केवल समाज के सर्वहारा संस्तरों के लिए बल्कि अर्ध-सर्वहारा संस्तरों के लिए भी आकर्षण की शक्ति बन गये हैं। क्रांतिकारी लोकतंत्रवादियों के बीच उनके अधिक उन्नत-प्रतिनिधि इस बात को समझने लगे हैं कि समाजवादी सिद्धांत सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक प्रगति के लिए नये मार्ग उन्मुक्त कर सकते हैं और तात्कालिक समस्याओं के सही हल की कुंजी प्रदान कर सकते हैं। यह आशा की जा सकती है कि क्रांतिकारी लोकतंत्र का और अधिक विकास' काफी बड़ी हद तक, इस बात पर निर्भर होगा कि वह वैज्ञानिक समाजवाद की स्थितियों को कितनी दृढ़ता के साथ और कितने सुसंगत रूप से अपनाता है। इस प्रक्रिया के विकास के साथ ही साथ राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों में क्रांतिकारी लोकतंत्र की राजनीतिक भूमिका भी बढ़ेगी।

हमारे युग की विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया अलग-अलग स्वरूपों वाली क्रांतियों तथा क्रांतिकारी आंदोलनों के परस्पर विलय की द्योतक है। हमारा युग न केवल समाजवादी क्रांतियों का बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति की क्रांतियों का भी युग है, जो कुछ विशेष परिस्थितियों में, विकसित होकर समाजवादी क्रांतियों का रूप धारण कर सकती हैं। यह बात कि इन क्रांतियों का स्वरूप भिन्न होता है, उनके विलय के मार्ग में बाधक नहीं हो सकती क्योंकि अंतिम विश्लेषण में वे एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं। विकासशील देशों में श्रमिक जनता के गैर सर्वहारा संस्तरों और उनके हरावल दस्ते की बढ़ी हुई राजनीतिक सक्रियता लेनिन के इस विचार की पुष्टि करती है कि "जो कोई भी 'शुद्ध सामाजिक क्रांति की आशा करता है वह उसे देखने के लिए जीवित नहीं रहेगा।" इसी बात में विकासशील देशों में क्रांतिकारी लोकतंत्र की ऐतिहासिक भूमिका का उद्गम है।

क्रांतिकारी लोकतंत्र के वैचारिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक मंचों का निर्धारण स्वयं राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति के दौरान ही होता है। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों के मुख्य सामाजिक आर्थिक लक्षणों तथा राजनीतिक विशिष्टताओं की परिभाषा करना कठिन होते हुए भी आवश्यक है।

1. अर्थतंत्र की सभी शाखाओं में विदेशी पूंजी का खात्मा या उस पर कड़ा अंकुश (जिसका अर्थ यह नहीं है पश्चिमी पूंजीवाद देशों के साथ समानता पर आधारित आर्थिक संबंध रखे ही न जायें); राष्ट्रीय (विशेष रूप से बड़ी) पूंजी के कार्य क्षेत्र में काफी कमी और उस पर सरकारी नियंत्रण की स्थापना; एक लोकतांत्रिक राज्यीय क्षेत्र की स्थापना और उसे प्रमुख आर्थिक संरचना में परिवर्तित कर देना; शहरों तथा देहातों के छोटे उत्पादकों को सहकारी संस्थाओं में एकतावद्ध करना; शहरों तथा देहातों की श्रमिक जनता के हित में सामाजिक कदम।

2. लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना, जिसमें एक हरावल राष्ट्रीय-देशभक्त पार्टी और श्रमिक जनता का एक जन-संगठन भी शामिल हैं; आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को हल करने में किसी न किसी हद तक जन-साधारण का प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करना।

3. राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों की विशिष्टताओं में उनकी विदेश नीति की दिशा का एक विशेष स्थान है। विश्व समाजवाद के साथ एकता की नीति ही राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति की सफलता को सुनिश्चित बना सकती है। ऐसा न होने पर क्रांतिकारी स्थितियों का ह्रास अनिवार्य है, जिसका प्रमाण एशिया तथा अफ्रीका के कुछ देशों के दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव में मिलता है।

उपयुक्त आर्थिक तथा राजनीतिक कदमों को लागू करने के दौरान बड़े-बड़े सामाजिक परिवर्तन होते हैं, जिसके फलस्वरूप वर्ग-शक्तियों के वितरण में हेर-फेर होते हैं, जैसे राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के दक्षिणपंथ सहित प्रतिक्रियावादी शक्तियों की राजनीतिक स्थितियों का ह्रास।

4. समाजवादी झुकाव रखने वाले देशों में राजनीतिक सत्ता की परिभाषा देना विशेष रूप से कठिन है। इसके लिए अलग-अलग सभी वर्गों तथा समाज के स्तरों के सामाजिक स्वरूप के विशद विश्लेषण की आवश्यकता होती है, विशिष्ट रूप से समाजवादी झुकाव रखने वाले कुछ देशों में नौकरशाही के सामाजिक स्वरूप के विश्लेषण की, जिसकी अपेक्षाकृत स्वायत्त स्थिति का सहारा लेकर इन देशों के शासक क्षेत्र कुछ समय तक राज्यसत्ता पर अपना कब्जा जमाये रहते हैं, और इस पूरे दौर में सामाजिक

दांव-पेच की कमोबेश नमनीय नीति पर चलते रहते है। यह एक जटिल प्रक्रिया है पर इससे किसी को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये, अपनी अस्थिरता के बावजूद यह सत्ता **किसी भी प्रकार कोई ऐसी सत्ता नहीं होती जिसका स्वरूप "वर्गो से परे" हो क्योंकि वह सब पहले और सबसे बढ़कर, निम्न पूंजीपति वर्ग के और उससे संबंध रखनेवाले सामाजिक संस्तरों के हितों को प्रतिबिंबित करती है।** यहां पर एक गम्भीर समस्या सामने आती है; क्या इस बात का खतरा है कि कुल मिलाकर वामपंथी-मूलगामी आंदोलन की कमज़ोरी की परिस्थितियों में (मजबूत और सुसंगठित कम्युनिस्ट पार्टियों का न होना) इस प्रकार की प्रगतिशील शासन सत्ताएं "शांतिपूर्वक" पतित होकर पूंजीवादी-नौकरशाही प्रणालियों का रूप धारण कर लें ? इसलिए, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों के और अधिक विकास के तरीकों का निर्धारण करने में नौकरशाही की सामाजिक राजनीतिक स्थिति, अफसरशाही की सामाजिक मनोदशा अंतिम भूमिका नहीं अदा करती।

राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति का विकास क्रम स्वयं ही विकसित होकर पूंजीवादी लोकतांत्रिक लक्ष्यों की सीमाओं से आगे निकल जाने की एक जटिल प्रक्रिया है।

इसीलिए आधुनिक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों के रूपों में इतनी जटिलता तथा विविधता है, जो उस प्रक्रिया के सार-तत्त्व को अभिव्यक्त करते हैं जब **कई देशों में राष्ट्रीय मुक्ति का संघर्ष विकसित होकर व्यवहारिक रूप से शोषण मूलक संबंधों के विरुद्ध संघर्ष का रूप धारण करने लगा है,** सामंती तथा पूंजीवादी दोनों ही प्रकार से शोषण के विरुद्ध। इन क्रांतियों का पूंजीवाद-विरोधी झुकाव अधिक स्पष्ट, अधिक स्थायी और सामाजिक दृष्टि से अधिक ठोस आधार वाला होता है।

पूंजीवादी ढंग की क्रांति से (जिसमें प्रभुत्व वस्तुगत अथवा आत्मगत रूप से राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के हाथों में रहता है) या जन लोकतांत्रिक क्रांति से (जिसमें प्रभुत्व सर्वहारा वर्ग के हाथों में रहता है) भिन्न रूप में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति की अगुवाई आम तौर पर गैर-सर्वहारा, जो इसके साथ ही शोषक भी नहीं होते, मध्यवर्ती तथा मध्यम संस्तर करते हैं, जो अधिकांश जनता का समर्थन प्राप्त कर लेते हैं (जिसमें पूंजीपति वर्ग

तथा सर्वहारा वर्ग के लोग भी शामिल रहते हैं, परन्तु जिनकी भूमिका नेतृत्वकारी नहीं होतीं) । इस प्रकार की क्रांति की विजय के फलस्वरूप राष्ट्रीय लोकतंत्र के ऐसे राज्य की स्थापना होती है जिसका आधार होता है "ऐसी सभी प्रगतिशील देशभक्त शक्तियों का गंठजोड़ जो पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा व्यापक लोकतंत्र प्राप्त करने के लिए और साम्राज्यवाद विरोधी, सामंतवाद-विरोधी, लोकतांत्रिक क्रांति को उसकी परिणति तक पहुंचाने के लिए लड़ रही हों।"

नियमतः राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति राष्ट्रीय मुक्ति की क्रांति के विकास की अगली कड़ी होती है।

पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। एक ओर तो ऐसे देशों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है जिन्होंने समाजवाद की ओर अपने झुकाव की घोषणा की है। इन देशों में अंगोला, मोजांबीक, गिनी बिसाऊ, इथिओपिया, बेनिन आदि शामिल हो गये हैं। दूसरी ओर, इन क्रांतियों के वे लक्षण अधिक प्रमुखता प्राप्त करते जा रहे हैं जो उनके भविष्य के बारे में अधिक आशाजनक दृष्टिकोण अपनाने का आधार प्रदान करते हैं, विशेष रूप से उनके समाजवादी परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से।

इस संबंध में अडिग रूप से क्रांतिकारी शक्तियों के सुदृढ़ होने और वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के आधार पर प्रगतिशील हरावल पार्टियों का बनना विशेष महत्व रखता है। यह राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांतियों को सुदृढ़ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। ये परिवर्तनविश्व समाजवाद के हितकारी प्रभाव के अधीन हो रहे हैं।

वास्तव में, अनेक नव-स्वतंत्र देशों का समाजवाद की ओर झुकाव दो द्वंद्वात्मक रूप से परस्पर संबंधित घटनाओं को प्रतिबिंबित करता है। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में क्रांतिकारी प्रक्रिया का गहरा होना और इतिहास के विकासक्रम पर विश्व समाजवाद के बहुमुखी प्रभाव में वृद्धि। एल० आई० ब्रेज़नेव ने कहा था, "पहले कुछ वर्षों में मुक्त देशों के एक बहुत बड़े समूह ने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रमुख दूरगामी सुधार आरंभ किये हैं, और समाजवाद के निर्माण को अपना लक्ष्य घोषित किया है। निश्चय

ही यह काम नवजात राज्यों के लिए आसान नहीं हैं, जिनके विकास को उपनिवेशवादियों ने कई शताब्दियों से रोक रखा है। इसके लिए आवश्यक हैं कि उत्पादक शक्तियों को उस स्तर तक ऊँचा उठाया जाये जो समाजवाद के लिए आवश्यक है, उत्पादन के सर्वथा नये संबंध स्थापित किये जायें, जनता की मनोवृत्ति को बदला जाये, और जन साधारण के समर्थन के आधार पर एक नया प्रशासन-तंत्र स्थापित किया जाये।

अनुभव ने लेनिन के इस विचार को पूरी तरह सही साबित कर दिया है कि उन्नत देशों के सर्वहारा वर्ग की सहायता से पिछड़े हुए देशों के लिए यह संभव होगा कि वे विकास की कुछ अवस्थाओं से होकर गुज़रने के बाद, पूंजीवाद की अवस्था में जाये बिना सीधे साम्यवाद की अवस्था में पहुंच जायें। लेनिन ने लिखा था, "इसके लिए आवश्यक उपायों को पहले से इंगित नहीं किया जा सकता। ये उपाय तो व्यावहारिक अनुभव ही बतायेगा।"

सोवियत मध्य एशियाई जनतंत्रों का फलना-फूलना, जातियों की समस्या का समाधान, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के हर रूप तथा अभिव्यक्ति का खात्मा, श्रमिकों की पूर्ण मुक्ति, सोवियत संघ की जनता की सामाजिक शक्ति का बंधन मुक्त किया जाना और तीव्र गति से उनकी आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रगति वह प्रथम व्यावहारिक अनुभव बन गया जिसने पिछड़े हुए राष्ट्रों को समाजवाद से परिचित कराया।

जहाँ तक साम्राज्यवाद का संबंध है, अपने अमानुषिक दर्शन तथा आचरण के कारण, दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करने के लिए चलाये गये युद्धों और अन्य देशों की जनता की प्राकृतिक संपदा की लूट के कारण, घृणित नव-उपनिवेशधारी तरीकों और नस्लवाद तथा रंगभेद का समर्थन करने के कारण, वह कोई रचनात्मक ऐतिहासिक विकल्प नहीं प्रस्तुत कर सकता। एल० आई० ब्रेज़नेव ने कहा है, "इस बात को बिल्कुल स्वाभाविक माना जा सकता है कि इन देशों की जनता जो साम्राज्यवादी आधिपत्य के दौर में यातनाओं तथा अपमान का विष अंतिम बूंद तक पी चुकी है, पूंजीवादी मार्गों से हटती जा रही है और समाजवाद की ओर झुकती जा रही है। इस चयन के पीछे जन-साधारण का वह दृढ़ संकल्प है जिसके विरुद्ध

भाड़े के हत्यारों की गोलियाँ, विध्वंसकारी कार्यवाहियाँ, धौंस और लांछन-युक्त प्रचार कुछ भी सफल नहीं हो सकता।"

समाजवाद के शत्रु विकासशील राज्यों के बारे में समाजवादी देशों के उद्देश्यों तथा इरादों के संबंध में जिन मनगढंत बातों का बड़े पैमाने पर प्रचार कर रहे हैं, उनके प्रसंग में इस बात पर ज़ोर देना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। चीन के नेता, पूंजीवादी जगत की सबसे प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ मिलकर सोवियत संघ की विदेश नीति के खिलाफ दुष्टता-पूर्ण प्रचार कर रहे हैं। एल० आई० ब्रेज़नेव ने बताया है, "लेकिन कोई भी लांछनयुक्त प्रचार तथ्यों का खंडन नहीं कर सकता है। तथ्य यह है कि समाजवाद के देश हमेशा सम्राज्यवादी आक्रमण, नादिरशाही तथा हिंसा से टक्कर लेने वाले देशों की जनता का पक्ष लेते हैं। तथ्य यह हैं कि समाज-वादी देश नवजात राज्यों के साथ समानता के आधार पर अपने संबंध विकसित कर रहे हैं और यथाशक्ति उनकी आर्थिक उन्नति में सहायता दे रहे हैं। और अंततः, तथ्य यह हैं कि समाजवादी देशों की नीति साम्राज्यवाद की शक्तियों को आगे बढ़ने से रोकती है, अतीत की उन शक्तियों को जो एक मरणासन्न स्थिति को बनाये रखने और नव-स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच कलह और झगड़े के बीज बोने की कोशिश कर रही हैं।

अक्तूबर क्रांति के अंतरराष्ट्रीय महत्व के बारे में लेनिन का मूल्यांकन हमेशा की तरह आज भी उतना ही सार्थक है। लेनिन ने 1920 में लिखा था, "अब हमारे पास बहुत काफी अंतरराष्ट्रीय अनुभव है, जिससे स्पष्ट पता चलता है कि हमारी क्रांति की कुछ बुनियादी विशेषताओं का महत्व ऐसा है जो स्थानीय, या ठेठ राष्ट्रीय, या केवल रूसी नहीं है, बल्कि अंतर-राष्ट्रीय है। मैं यहाँ पर अंतरराष्ट्रीय महत्व का उल्लेख इस शब्द के व्यापक अर्थ में नहीं कर रहा हूँ: हमारी क्रांति की न केवल कुछ बल्कि सारी प्राथ-मिक विशेषताएँ, और उसकी कुछ गौण विशेषताएँ भी, अंतरराष्ट्रीय महत्व रखती हैं, इस अर्थ में कि उसका प्रभाव सभी देशों पर पड़ता है। मैं इसका उल्लेख इस शब्द के सबसे संकुचित अर्थ में कर रहा हूँ; अंतरराष्ट्रीय महत्व से मेरा अभिप्राय यह है कि हमारे देश में जो कुछ हुआ है उसकी अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर पुनरावृत्ति अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से सार्थक और इतिहास की दृष्टि

से अनिवार्य है। यह मानना होगा कि हमारी क्रांति की कुछ मूलभूत विशेषताएँ यह महत्व रखती हैं।"

अक्तूबर क्रांति ने विश्व क्रांतिकारी मुक्तिदायक आंदोलन पर निरंतर बढ़ता हुआ प्रभाव डाला है और अब भी डाल रही है। उसने विभिन्न देशों की जनता के संघर्ष की प्रबल क्रांतिकारी लहर को प्रेरणा दी जिसके दबाव के कारण दुनिया में मूलगामी परिवर्तन हुए हैं और उपनिवेशवाद के गढ़ ढह गये हैं। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के उन सैकड़ों देशों की जनता अब इतिहास का निर्माण करने में भाग ले रही है, जिन्हें पहले इतिहास के प्रशस्त पथ से दूर रखा गया था और विश्व राजनीति पर जिनका प्रभाव आज निरंतर बढ़ता जा रहा है। इसी में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के लिए "शब्द के व्यापक अर्थ में" अक्तूबर क्रांति का महत्व निहित है। इसके साथ ही हमारे युग में, जो पूरे विश्व के पैमाने पर पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण का युग है, जबकि बीसियों देश और उनकी जनता पूँजीवाद को ठुकराकर समाजवाद की ओर झुकाव का पथ अपना रही है, संसार के सर्वप्रथम समाजवादी समाज की स्थापना करने वाली अक्तूबर क्रांति का अनुभव विशेष रूप से मूल्यवान है। जो देश यह पथ अपना चुके हैं या अपना रहे हैं वे सोवियत संघ द्वारा संचित ऐतिहासिक अनुभव के भंडार से बुनियादी विचार ग्रहण करते हैं। यही उनकी सफलताओं का आश्वासन है। जीवन ने स्वयं उन लोगों को झूठा सिद्ध कर दिया है जो अक्तूबर क्रांति के अंतरराष्ट्रीय महत्व को घटाना, और उसे केवल एक "रूसी प्रयोग" के रूप में पेश करना चाहते हैं, और इस बात की पुष्टि कर दी है कि वह समाजवाद तथा कम्युनिज़्म में संक्रमण के लिए समस्त मानवता के लिए अब भी एक अनुकरणीय आदर्श है। इसी बात में अक्तूबर क्रांति के अंतरराष्ट्रीय महत्व का सार निहित है।

नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था के लिए संघर्ष में समाजवादी तथा विकासशील देशों की भूमिका

समाजवाद का परम लक्ष्य है शांति की परिस्थितियों में सामाजिक प्रगति। इस उच्च लक्ष्य के लिए काम करते हुए सोवियत विदेश नीति अनिवार्य रूप से सोवियत सत्ता के उन प्रारंभिक दिनों में प्रतिपादित बुनियादी सिद्धांतों का अनुसरण करती रही है जब लेनिन कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्यसत्ता के प्रधान थे—सर्वहारा अंतरराष्ट्रवाद और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत। ये सिद्धांत मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांतों का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। संसार की आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों को और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में शक्तियों के पारस्परिक संबंध को ध्यान में रखते हुए इन सिद्धांतों को और विकसित किया गया है।

सोवियत संघ की अंतरराष्ट्रीय गतिविधियां हमेशा संसार के विभिन्न देशों की जनता के बुनियादी हितों के अनुकूल रही हैं, जिनमें उपनिवेशिक तथा पराश्रित देशों की जनता भी शामिल है। शोषण व्यवस्था विभिन्न देशों की जनता को युद्धों की जिस रक्त-रंजित अराजकता में निरंतर ढकेलती रहती थी उससे बाहर निकलने का एकमात्र सही रास्ता सोवियत संघ ने दिखाया। सोवियत सरकार का पहला अध्यादेश शांति का अध्यादेश था जिसमें न्यायपूर्ण, लोकतांत्रिक तथा सार्वत्रिक शांति के लिए संघर्ष के कार्यक्रम की घोषणा की गयी थी। इस प्रकार अक्तूबर क्रांति ने समाज के जीवन से युद्धों को मिटा देने के संघर्ष के युग की शुरूआत की।

इस लक्ष्य को पूरा करने में, जिसे कम्युनिस्ट तथा मज़दूरों की पार्टियों की 1969 की अंतरराष्ट्रीय मीटिंग ने समस्त मानवता का सर्वोच्च लक्ष्य माना था, एक प्रमुख भूमिका सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24 वीं कांग्रेस में प्रस्तुत किये गये शांति-कार्यक्रम की रही है, जिस कार्यक्रम की 25 वीं कांग्रेस में एक बार फिर पुष्टि की गयी और उसे और अधिक विकसित किया गया।

अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि सोवियत संघ ने अक्तूबर क्रांति के बाद से जो भी शांतिपूर्ण कार्य किये हैं और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो भी पहल-कदमियां की हैं वे संसार के विभिन्न देशों की जनता के बुनियादी हितों के अनुकूल रही हैं, और साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और नव-उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रांतिकारी संघर्ष के उद्देश्यों को पूरा करती रही हैं। इसकी परम अभिव्यक्ति अंतरराष्ट्रीय तनाव में उस कमी के रूप में हुई है जो सोवियत संघ के प्रयत्नों और सभी समाजवादी देशों की समन्वित कार्रवाई की बदौलत प्राप्त की जा सकी है। तनाव-शैथिल्प की परिस्थितियों में विकासशील देशों की प्रगति में सुविधा हुई है, मुक्ति की शक्तियों ने नयी महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त की हैं और समानता तथा परस्पर लाभदायक सहयोग की बुनियाद पर अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के ढांचे को पुनर्गठित करने का संघर्ष तेज़ होता गया है।

हमारे युग में, तनाव-शैथिल्प के शत्रुओं की अनेक साज़िशों के बावजूद विभिन्न देशों तथा उनकी जनता के पारस्परिक संबंधों में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत अधिकाधिक दृढ़तापूर्वक अपना प्रभाव स्थापित करते रहे हैं।

एक सवाल उठता है, जो यों तो बहुत दीर्घकाल से दक्षिणपंथी और "वामपंथी" दोनों ही प्रकार के सुधारवादियों की अनुमान मूलक मान्यताओं का विषय रहा है : क्या तनाव-शैथिल्प विश्व क्रांतिकारी मुक्ति आंदोलन के और अधिक विकास में सुविधा पहुंचाता है, या इसके विपरीत वह अंतरराष्ट्रीय साम्राज्यवादी क्षेत्रों के हाथ में खेलता है ? यह बुनियादी तौर पर कोई सीधा-सादा सवाल नहीं है, बल्कि एक ऐसा सवाल है जो गरमागरम बहस का विषय रहा है। अनुभव बताता है कि तनाव-शैथिल्प **सामाजिक**

विकास के सभी नियमों की प्रकृत क्रिया को संभव बनाता है, और इन नियमों को उन अस्थायी विकृतियों से मुक्त कर देता है जो अंतरराष्ट्रीय तनाव तथा युद्ध-उन्माद में वृद्धि, सैन्यीकरण में तेज़ी और शस्त्रास्त्रों के व्यापार के विस्तार के कारण पैदा हो गयी थीं, जो बातें अंततः केवल साम्राज्यवादियों को ही लाभ पहुंचाती हैं। तनाव-शैथिल्प की परिस्थितियों में हर समाज-व्यवस्था उन गुणों का प्रदर्शन करती है जो उसमें अंतर्निहित हैं। देखिये सोवियत संघ ने पिछली पंचवर्षीय योजना के काल में भौतिक तथा आत्मिक जीवन के सभी क्षेत्रों में कितनी शानदार सफलताएं प्राप्त की हैं और दूसरी ओर विश्व पूंजीवाद कितने गहरे संकट का सामना कर रहा है, जिसकी तुलना केवल 1929-33 के संकट से की जा सकती है। जैसा कि एल० आई० ब्रेज़नेव ने कहा है : 'तनाव-शैथिल्य के विरोधियों को इस बात का भरोसा नहीं है कि आक्रमण और बल-प्रयोग की धमकियों का सहारा लिये बिना और दूसरे देशों की जनता की स्वतंत्रता तथा हितों पर अतिक्रमण किये बिना पूंजीवाद जीवित रह भी सकता है या नहीं।"

यह कहा जा सकता है कि विकासशील देशों के जो लोग "वामपंथी" पराक्रमवादी तत्वों के इस आशय के दावों को दोहराते हैं कि तनाव-शैथिल्प और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व "पूंजीवाद को सहारा देने" और सामाजिक आर्थिक यथास्थिति को "ज्यों का त्यों बनाये रखने" का साधन हैं, वे भी ऐसी ही अदूरदर्शिता और स्वयं अपनी शक्ति में, इतिहास के नियमों में और स्वतंत्रता के लिए अपनी जनता के संघर्ष की ताकत में अविश्वास का प्रदर्शन करते हैं। जीवन के अनुभव ने अकाट्य रूप से इस प्रकार के दावों को गलत साबित कर दिया है और इस निष्कर्ष की अखंडनीयता की पुष्टि कर दी है कि कोई भी क्रांति सबसे पहले और सबसे बढ़कर संबंधित समाज के आंतरिक विकास का स्वाभाविक परिणाम होती है।

जैसा कि हम पिछले दशकों के इतिहास से देख सकते हैं, जब भी कोई समाज क्रांति के लिए परिपक्व होता है तो साम्राज्यवादी तथा स्थानीय प्रतिक्रियावादी तात्कालिक सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष के सार-तत्व को विकृत कर देने तथा बदल देने की, उसे धार्मिक अथवा जातीय कलह के रास्ते पर लगा देने की कोशिश करते हैं, जैसा कि उदाहरण के लिए, 1947

में भारत में, 1948 में फिलिस्तीन में, 1958 तथा 1975 में लेबनान में हुआ। साम्राज्यवाद ने शीत-युद्ध का लाभ उठाकर अंतरराष्ट्रीय तनाव को बढ़ा दिया ताकि पूंजीवादी देशों और स्वतंत्र देशों दोनों ही में आम मेहनतकश जनता को डरा-धमकाकर दबाया जा सके, गुमराह किया जा सके और धोखा दिया जा सके। "शीत-युद्ध" से साम्राज्यवादियों को इस बात का मौका मिला कि वे नवजात राज्यों को सैनिक गुटों में घसीट लायें, उनके सैनिक अड्डों तथा विभिन्न प्रकार की ज़िम्मेदारियों की हामी भरने के जाल में फांस दें, उनकी जनता के बीच कम्युनिज़्म-विरोध तथा सोवियत-विरोध की भावना भड़का सकें और इस प्रकार समाजवादी देशों के साथ उनके आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक सहयोग को रोक सकें।

तनाव-शैथिल्प की दिशा में मोड़ से एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के देशों की आंतरिक स्थिति में सुधार हुआ है, जिनमें वे देश भी शामिल हैं जो अभी तक अपने को मुक्त नहीं कर पाये हैं। पिछले पांच-दस वर्षों में उन देशों की जनता ने, जो पहले पराधीन थे, राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने, मूलगामी सामाजिक सुधारों और उद्योगीकरण का काम पूरा करने और सर्वतोमुखी आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रगति को बढ़ावा देने में अत्यधिक सफलताएं प्राप्त की हैं। अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि समाजवादी देश नहीं बल्कि साम्राज्यवादी थे जो "यथास्थिति को ज्यों का त्यों बनाये रखना" चाहते थे।

दुनिया के राजनीतिक मानचित्र पर एक दृष्टि भर डाल लेने से यह अनुमान हो जाता है कि तनाव-शैथिल्प की परिस्थितियों में "तीसरे विश्व" की जनता की उपलब्धियां कितनी सराहनीय रही हैं। दुनिया में सचमुच बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इंडो-चाइना की जनता ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध शानदार विजय प्राप्त की है। अफ्रीका के दक्षिण में रंगभेद-उपनिवेशवाद का अंतिम गुट लगभग चूर-चूर हो गया है। गिनी-बिसाऊ मोजांबीक और अंगोला ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करके पहले से ही यह बिल्कुल तय कर दिया है कि पुराने "खंडहर" उपनिवेशवाद का वह किला ढह चुका है, जो अंतरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के विचार में एशिया के

स्वतंत्र राज्यों के विरुद्ध संघर्ष में मुख्य आधार बनने वाला था। आज किसी को भी इस बात में संदेह नहीं है कि अमरीका और ब्रिटेन की सारी तिकड़मों और चालबाज़ियों के बावजूद वह दिन दूर नहीं है जब जिम्बाब्वे, नामीबिया और दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के अल्पसंख्यक गोरों के सड़े-गले शासनों का तख्ता उलट जायेगा।

इन्हीं वर्षों के दौरान उपनिवेशों के खात्मे की प्रक्रिया प्रशांत महासागर, हिंद महासागर तथा कैरिबियन सागर के कई द्वीपों में भी फैल गयी है, अर्थात् इन प्रदेशों में जिन्हें अभी कुछ ही समय पहले तक उपनिवेशवाद की जागीर समझा जाता था।

इसके साथ ही "तीसरे 'विश्व" के देश वर्तमान विश्व अर्थ-व्यवस्था में भी मूलगामी परिवर्तन लाने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं। याद रहे कि तनाव-शैथिल्प की प्रक्रिया की कालावधि भी वही है जिस दौर में अनेक बार बहुत बड़ी उथल-पुथल हुई है जिसने पूंजीवादी विश्व की बुनियादों तक को हिला दिया है। 1970 के बाद वाले दशक में जो ऊर्जा संकट आरंभ हुआ था उसने वित्तीय, मुद्रा-संबंधी तथा कच्चे माल के संकटों की एक श्रंखलाबद्ध प्रतिक्रिया आरंभ कर दी, जिसके कारण पूरे पूंजीवादी जगत में गंभीर सामाजिक समस्याएं उठ खड़ी हुईं। ऐसी परिस्थितियों में, एक नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था की स्थापना के लिए पूंजीवादी तथा विकासशील देशों के पारस्परिक आर्थिक संबंधों के पुराने, बुनियादी तौर पर उपनिवेशिक, रूपों के विरुद्ध नव-स्वतंत्र देशों की जनता ने लड़ाई छेड़ दी है, जिसकी व्यापकता तथा जिसके सामाजिक-आर्थिक परिणाम अत्यन्त विशाल पैमाने के हैं।

देशों के इन दोनों समूहों के बीच पहले भी आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में तीव्र मतभेद और झगड़े थे। पर मौजूदा संघर्ष इस टकराव के पुराने रूपों से बुनियादी तौर पर भिन्न है। पहली बात तो यह कि अब लड़ाई अलग-अलग मदों पर नहीं बल्कि कच्चे माल के पूरे क्षेत्र के बारे में चल रही है। साम्राज्यवादी देशों के साथ समानता पर आधारित आर्थिक संबंधों का संघर्ष, जो 1973 में तेल निर्यात करने वाले देशों ने छेड़ा था, अब कच्चे माल के सभी प्रमुख क्षेत्रों में फैल गया है (कपास, जूट, क्रोमियम, निकल,

रबर, चाय, कोको, इत्यादि)। दूसरी बात यह कि अब यह संघर्ष इस आधार पर नहीं हो रहा है कि एक ओर अलग-अलग विकासशील देश या उनके समूह हैं और दूसरी ओर साम्राज्यवादी ताकतें; बल्कि जैसा कि कच्चे माल तथा विकास की समस्याओं पर विचार करने के लिए आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के छठे तथा सातवें विशेष अधिवेशनों, नैरोबी में व्यापार तथा विकास के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ के चौथे सम्मेलन (मई 1976), कोलंबो में गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के पांचवें सम्मेलन (अगस्त 1976) और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रदर्शित हो चुका है, एक ओर सभी विकासशील देश हैं जिनको समाजवादी राज्यों का सक्रिय समर्थन प्राप्त है और दूसरी ओर साम्राज्यवादी ताकतों का गुट है। विकासशील देश एक नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था की मांग कर रहे हैं; वे अब इसके लिए तैयार नहीं हैं कि उन पर नादिरशाही फरमान लागू किये जायें और कड़ी शर्तें थोपी जायें।

यह सच है कि नयी अर्थ व्यवस्था के लिए संघर्ष को कुछ सफलताएँ तो मिली हैं, लेकिन इन्हें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आँका जाना चाहिये। यह संघर्ष अभी तो आरंभ ही हो रहा है, और यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि विकासशील देशों के दबाव से टक्कर लेने के लिए और असमानता पर आधारित मौजूदा अर्थ-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी अपने अस्त्रागार का हर हथियार और तिकड़म इस्तेमाल करेंगे।

"तीसरे विश्व" में साम्राज्यवाद की आर्थिक रणनीति में शुद्धतः आर्थिक तथा, व्यापक अर्थ में, सामाजिक तत्वों का संयोजन है। आज उन्नत पूंजीवादी देशों की दीर्घकालीन आर्थिक नीति का झुकाव इस ओर है कि एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका को पूंजीवादी उत्पादन के सभी मुख्य क्षेत्रों में सक्रिय रूप से शामिल किया जाये : मंडियों के मामले में, पूंजी तथा वित्तीय साधनों के एक-जगह से दूसरी जगह आने-जाने के मामले में, आधुनिक टेक्नोलोजी के प्रसार के मामले में और उद्योगों के मामले में। बाहर से देखने में पश्चिमी देश इस बात को मानने को तैयार हैं कि उद्योगीकरण आवश्यक है और "तीसरे विश्व" के जीर्ण-शीर्ण सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में तत्काल सुधार होना चाहिये, लेकिन वे तीन बुनियादी शर्तें लगाते हैं :

निजी विदेशी पूंजी को अपने दाँव-पेंच चलाने की आवश्यक आजादी होनी चाहिये और राजनीतिक खतरों से सुरक्षा की गारंटी होनी चाहिये; राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्र में मिले-जुले अर्थतंत्र के सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिये, और इस प्रकार स्थानीय "मध्यम वर्ग" के विकास की गारंटी होनी चाहिये; विकसित पूंजीवादी राज्यों के साथ अपने संबंधों में विकासशील देशों को मंडी के "नियमों" का पालन करना चाहिये। कुल मिलाकर साम्राज्यवाद आज इस बात को मानता है कि पहले के उपनिवेशों तथा अर्ध-उपनिवेशों का तेज़ी से आर्थिक विकास होना अनिवार्य है, परंतु वह चाहता है कि इस विकास का रूप पराश्रित पूंजीवादी विकास का रूप हो, जिससे यह संभव हो जायेगा कि नयी टेक्नोलोजी को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से स्थानांतरित करके, उद्योगों, मंडियों तथा पूंजी के परस्पर संबंधित तथा मिले-जुले ढाँचे की स्थापना करके जो विकसित देशों तथा विकासशील देशों को आपस में जोड़ दें, प्रबंध-व्यवस्था के क्षेत्रों में विशिष्ट सेवाएँ उपलब्ध करके, उत्पादन को संगठित करके और उत्पादन के हितों के अनुसार वैज्ञानिक शोध की व्यवस्था करके इन देशों का शोषण अधिक परिष्कृत आधुनिक तरीकों से किया जा सके।

इस रणनीति को, जिसके राजनीतिक तथा वर्गगत उद्देश्यों में समरूपता है पर तरीकों में विविधता है, क्रियान्वित करने के सबसे सशक्त साधन हैं निजी इजारेदारियों का पूंजी लगाना और पश्चिमी देशों की सरकारों और कई देशों की सरकारों के मिले-जुले संगठनों द्वारा वित्तीय साधनों तथा संगठनात्मक-तकनीकी सेवाओं का उपलब्ध किया जाना ("मदद")।

नीचे कुछ तथ्य और आँकड़े दिये जा रहे हैं जिनसे पता चलता है कि एशियाई, अफ्रीकी तथा लैटिन अमरीकी देश किस हद तक पश्चिमी देशों पर आश्रित हैं और जिनसे नव-उपनिवेशवाद के वास्तविक अर्थ का रहस्योद्घाटन होता है।

नवीनतम अनुमानों के अनुसार, एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका में विदेशी इजारेदारियों की कुल 45 अरब डालर की पूंजी लगी हुई है, इसमें से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पावना एक-तिहाई के बराबर है। 1976 के अंत तक विकासशील देशों का विदेशी कर्ज़ 1973 से दुगना होकर

200 अरब डालर तक पहुँच गया था।

अधिक संकुचित तथा ठोस अर्थ में नव-उपनिवेशवाद की रणनीति का वर्णन इस रूप में किया जा सकता है कि वह "तीसरे विश्व" के उन सभी तत्त्वों को प्रोत्साहित करने तथा सुदृढ़ता प्रदान करने का समर्थन करने की उद्देश्यपूर्ण नीति है, जिनमें पूँजीवादी संबंधों को जन्म देने की क्षमता हो।

इस प्रकार, नव-उपनिवेशवाद के रणनीति-संबंधी उद्देश्यों का कुल निचोड़ यह है कि अत्यंत विविध प्रकार के उपायों से विकासशील देशों में साम्राज्यवादी पूँजीपति की वर्ग-स्थितियों को मज़बूत किया जाये तथा फैलाया जाये। भूतपूर्व साम्राज्यधारी देश सबसे पहले इस बात का प्रयत्न करते हैं कि वे अपने आपको औपचारिक रूप से अपने भूतपूर्व उपनिवेशों को स्वतंत्रता देने तक सीमित रखे और फिर उन पर "साझेदारी" के ऐसे समझौते थोप दें जिससे उनकी स्वतंत्रता बहुत बड़ी हद तक सीमित हो जाये। फलस्वरूप, प्रभुत्व तथा पराधीनता के सीधे संबंधों की जगह ऐसे "सहयोग" की स्थापना की जाती है जिसका उद्देश्य ढके-छिपे रूप में साम्राज्यवादी शोषण के मुख्य आयामों को सुरक्षित रखना होता है। राजनीति में नव-उपनिवेशवाद राजनीतिक धौंस और दबाव के अनेक तरीके इस्तेमाल करता है (कूटनीतिक दबाव, धमकियाँ, राजनीतिक उद्देश्यों से आर्थिक प्रतिबंध) या, इसके विपरीत, कुछ समय के लिए ऐसी छोटी-मोटी रिआयतों तथा "मदद" की मंजूरी दे देता है जिनका लक्ष्य राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण राजनीतिक लाभ प्राप्त करना होता है।

पिछले कुछ वर्षों में प्रमुख साम्राज्यवादी शक्तियाँ अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक, योरपीय आर्थिक समुदाय, अमरीकी राज्यों का संगठन, "मदद" के विभिन्न सामूहिक संगठनों तथा क्लबों आदि जैसे अंतर्राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक संगठनों की आड़ में काम करते हुए राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के विरुद्ध अपने संघर्ष में अपने साधनों को समवेत करने के उद्देश्य से सामूहिक नव-उपनिवेशवाद के विभिन्न अस्त्रों को अधिकाधिक सक्रिय रूप से इस्तेमाल करती रही हैं।

सैनिक-राजनीतिक रणनीति अब भी साम्राज्यवाद तथा नव-उप-

निवेशवाद की नीति का एक महत्वपूर्ण अंग है। हालांकि राजनीतिक समस्याओं को हल करने के लिए सैनिक साधनों का प्रत्यक्ष सहारा लेना आज साम्राज्यवाद की उतनी लाक्षणिक विशेषता नहीं है जितनी पहले थी, फिर भी कुछ उदाहरणों में वह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष हस्तक्षेप का सहारा लेने में संकोच नहीं करता। बात केवल इतनी ही नहीं है कि विकासशील देशों के इलाकों में अभी तक साम्राज्यवादी राज्यों के दर्जनों फौजी अड्डे मौजूद हैं। तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को रोकने के फेर में नव-उपनिवेशवादी बहुधा "तीसरे विश्व" में स्थानीय झगड़े तथा युद्ध भड़काते रहते हैं, और इसके साथ ही साम्राज्यवादी राज्य सीधा आक्रमण कर देते हैं (अरब-इस्रायली झगड़ा, दक्षिण ज़ाइर की घटनाएँ, इत्यादि)। साम्राज्यवादी पूरा ज़ोर लगाकर विकासशील विश्व के विभिन्न प्रदेशों में सैनिक गुटों को मज़बूत करने की कोशिश कर रहे हैं।

ऐसी जटिल परिस्थितियों में, जबकि नव-उपनिवेशवादी अपनी स्थितियों को बचाये रखने के लिए विश्वव्यापी प्रयत्न कर रहे हैं, एक नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था की स्थापना जैसे विशाल लक्ष्य को सामने रखना ही, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि उसके सफलतापूर्वक पूरा होने की संभावना, जैसा कि विकासशील देशों की प्रथम सफलताओं ने सिद्ध कर दिया है, सबसे पहले और सबसे बढ़कर समाजवादी देशों के समर्थन से अनुकूलित होती हैं।

विश्व समाजवाद के साथ राष्ट्रीय-मुक्ति आंदोलन के संश्रय का सुदृढ़ीकरण नयी विश्व अर्थ-व्यवस्था के लिए संघर्ष में मुख्य कारक रहा है और रहेगा। आर्थिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष की अवस्था के दौरान इस एक का और भी अधिक महत्व हो जाता है, जिसने पहली अवस्था के दौरान उपनिवेशिक व्यवस्था को ढाने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की थी।

समाजवादी विश्व के समर्थन का सहारा लेकर विकासशील देश एक शक्तिशाली मुहिम आरंभ करने में समर्थ हुए हैं जिसका उद्देश्य इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने आंतरिक साधनों को जुटाना तथा उनका अधिक कारगर उपयोग करना है।

सोवियत संघ तथा विकासशील देशों के पारस्परिक सहयोग में निरंतर सुधार होता जा रहा है, क्योंकि समझदारी की वास्तविक आवश्यकताओं

को ध्यान में रखा जाता है, और सहयोग के रूपों तथा तरीकों में परिवर्तन होते रहते हैं (संयुक्त औद्योगिक प्रायोजनाएँ, प्राकृतिक साधनों को उपलब्ध करना, आर्थिक विकास का नियोजन, इत्यादि)। राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियों के विकास में, आर्थिक मुक्ति प्राप्त करके राजनीतिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने में लिए तथा नव-उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवादी दबाव के हर रूप के विरुद्ध नव-स्वतंत्र राज्यों के सफल संघर्ष में सोवियत संघ एक महत्व-पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक, वैचारिक तथा सैनिक भूमिका अदा करता है।

सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी राज्यों की ओर से नव-स्वतंत्र राज्यों को मिलने वाली बहुमुखी सहायता तथा समर्थन इन देशों की सफलताओं तथा विजय के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यक शर्त हैं; वे अत्यधिक अतरराष्ट्रीय महत्व का एक कारक हैं जो राष्ट्रीय-मुक्ति आंदोलनों में गहराई पैदा होने की संभावनाओं को बहुत प्रभावित करता है। विकासशील देशों के साथ सोवियत संघ के संबंध पहले कभी की अपेक्षा अधिक व्यापक और मज़बूत हो गये हैं और उनमें एक नयी राजनीतिक अर्थवस्तु का समावेश हो गया है। एल० आई० ब्रेज़नेव ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25 वीं काँग्रेस में केंद्रीय समिति की रिपोर्ट में बताया था : "विकासशील देशों में चलने वाली जटिल प्रक्रियाओं के प्रति सोवियत संघ का रवैया स्पष्ट तथा सुनिश्चित है। सोवियत संघ दूसरे देशों तथा उनकी जनता के अंदरूनी मामलात में हस्तक्षेप नहीं करता। हर जनता, हर देश के अपने विकास का मार्ग स्वयं चुनने के पुनीत अधिकार का सम्मान करना हमारी लेनिनवादी विदेश नीति का एक अटल सिद्धांत है। लेकिन हम अपने विचारों को छिपाते नहीं। अन्य सभी जगहों की तरह विकासशील देशों में भी हम प्रगति, लोकतंत्र तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता की शक्तियों के पक्ष में हैं और संघर्ष में उन्हें अपना मित्र, तथा साथी मानते हैं।"

विकासशील देशों के साथ अपने कूटनीतिक तथा राजनीतिक संबंधों में सोवियत संघ इन देशों की राजनीतिक स्वाधीनता और अंतर्राष्ट्रीय सत्ता को सुदृढ़ करने में हर प्रकार से योग देने की कोशिश करता है। इस रवैये के जो आधारभूत हैं सिद्धांत उनकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति इन देशों के साथ सोवियत संघ के संधि-संबंधों में होती है। देशों के बीच एक नये प्रकार के

संधि-संबंध स्थापित किये जा रहे हैं, जो भारत, इराक, सोमालिया, अंगोला तथा मोज़ंबीक के साथ की गयी शांति, मित्रता तथा सहयोग की संधियों में मूर्त्त हैं और विश्व समस्याओं के मुख्य प्रश्नों पर राजनीतिक संपर्क बढ़ाये जा रहे हैं।

इधर के कुछ वर्षों में नव-स्वतंत्र राज्यों के साथ सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के आर्थिक सहयोग में बहुत बड़ी प्रगति हुई है। नये तथा अधिक कारगर प्रकार के आर्थिक संबंधों के लिए परिस्थितियाँ पैदा हो रही हैं। इन राज्यों के साथ सोवियत संघ का बढ़ता हुआ आर्थिक सहयोग किस पैमाने का है इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका के देशों में सोवियत सहायता से लगभग 1,000 परियोजनाओं का निर्माण हो चुका है या हो रहा है। कुल मिलाकर पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य देश 75 विकासशील देशों में 2,500 से अधिक परियोजनाओं के निर्माण में सहायता दे रहे हैं।

सोवियत संघ की वाह्य आर्थिक नीति को समस्त समाजवादी जगत की प्रगति से, पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद की एकीकरणमूलक प्रक्रियाओं से, श्रम के समाजवादी विभाजन के लाभों के उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता।

1973 में पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के देशों ने विकासशील राज्यों में समाजवादी देशों की आर्थिक तथा तकनीकी सहायता से बनायी जाने वाली परियोजनाओं को ऋण देने के लिए अंतरराष्ट्रीय पूंजी-निवेश बैंक के तहत एक विशेष निधि की स्थापना के बारे में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस निधि में से बैंक उद्योग, कृषि तथा नव-स्वतंत्र राज्यों के अर्थतंत्र की अन्य शाखाओं के विकास के लिए सूद की नीची दरों पर लंबी अवधि के लिए (15 वर्ष तक की) ऋण देता हैं।

सर्वहारा अंतरराष्ट्रवाद के सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान रहकर सोवियत संघ और समाजवादी बिरादरी के अन्य देश न्यायपूर्ण तथा रचनात्मक आधार पर अंतरराष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं को शीघ्रतम हल करने का दृढ़तापूर्वक समर्थन करते हैं।

सभी यथार्थनिष्ठ पर्यवेक्षक नयी अर्थ-व्यवस्था के लिए संघर्ष में विभिन्न

देशों की जनता की प्रथम सफलताओं का मूल्यांकन इस रूप में करते हैं कि वे विश्व समाजवाद तथा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के संश्रय फलप्रदता का नया प्रमाण हैं।

सभी जानते हैं कि विश्व समाजवाद ने हमेशा नव-स्वतंत्र देशों को सहायता दी है। प्रश्न उठता है : क्या तनाव-शैथिल्य के कारण इस क्षेत्र में कोई परिवर्तन आये हैं ?

तनाव-शैथिल्य इस सहायता की प्रभावकता को बढ़ाने का साधन रहा है क्योंकि उसने नव-स्वतंत्र राज्यों के लिए यह अधिक आसान बना दिया कि वे आक्रमणकारी गुटों से बाहर निकल आयें और उन पर थोपे गये सैनिक अड्डों, समझौतों तथा प्रतिबद्धताओं से और उनकी असमान स्थिति के लिए जिम्मेदार अन्य कारकों से छुटकारा पा सकें। एक बार ये काम पूरे हो जाने पर यह तर्कसंगत ही होगा कि कई दशाब्दियों के मिथ्या प्रचार से खड़ी की गयी कम्युनिस्ट-विरोध तथा सोवियत-विरोध की दीवारें ढह जायें। हालाँकि साम्राज्यवादियों के साथ मिलकर स्थानीय प्रतिक्रियावादियों की हरकतों के कारण इस तरह की बातें अब भी होती रहती हैं, लेकिन कहा जा सकता है कि सोवियत संघ तथा वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति वैचारिक शत्रुता के अधिक घृणित रूप अब दम तोड़ चुके हैं, जिसके कारण अब नवोदित राज्यों तथा समाजवादी देशों के बीच अधिक कारगर आर्थिक, वाणिज्यिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी संपर्क संभव हो गये हैं। वास्तव में, तीव्र गति से इन संपर्कों की वृद्धि ने, जिसकी शीत-युद्ध के दौरान कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, नव-स्वतंत्र देशों की सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रगति में काफी योगदान किया है। इतना ही नहीं, जब इन देशों ने अपने को सैन्यीकरण तथा युद्ध-उन्माद के बोझ से मुक्त कर लिया, जो एक अतिरिक्त माध्यम थे जिसके जरिये साम्राज्यवाद अपना प्रभाव जमाता था, उसके ठीक बाद हीं इन देशों में वे स्वाभाविक सामाजिक प्रक्रियाएं आरंभ हुईं जिनके फलस्वरूप इन देशों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक तथा वैचारिक जीवन के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।

इस प्रकार जीवन स्वयं विकासशील देशों में तनाव-शैथिल्य के विरो-

धियों की एक और मिथ्या प्रस्थापना का खंडन करता है, इस प्रस्थापना का कि तनाव-शैथिल्य "आंतरिक सामाजिक यथास्थिति" को सुरक्षित रखने का द्योतक है,अर्थात् यह कि वह अफ्रीकी-एशियाई देशों में क्रांतिकारी प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देता है और इस प्रकार उनके क्रांतिकारी नवीकरण में बाधक होता है। तनाव-शैथिल्य की परिस्थितियों में ही विकासशील देशों ने राष्ट्रीय-मुक्ति क्रांति की नयी, यद्यपि अधिक जटिल, अवस्था में प्रवेश किया है, जबकि मुख्य लक्ष्य सामाजिक आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में उपनिवेशवाद की जड़ों को खत्म करना है। उन्होंने पुराने उपनिवेशिक सामाजिक आर्थिक ढाँचे को मिटा देने का बीड़ा उठा लिया है, और इसके लिए ऐसे दूरगामी सुधार आवश्यक हैं जैसे कृषि-संबंधों का नया ढाँचा तैयार करना, किसी न किसी रूप में उद्योगीकरण, आय का अधिक न्यायोचित वितरण, इत्यादि। इन कामों का स्वरूपयों भी अत्यंत क्रांतिकारी है, जिनके लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रगतिशील शक्तियों को इस काम के लिए जुटाया जाये और साम्राज्यवाद-विरोधी शक्तियों की एकता को और सुदृढ़ किया जाये।

हम "तीसरे विश्व" के देशों के विकास पर तनाव-शैथिल्य के प्रभाव के एक और पहलू का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। अभी बहुत समय नहीं बीता है जब ये देश रचनात्मक काम का बीड़ा उठाने में समर्थ हो सके। एक ऐसे कार्यक्रम आर्थिक ढाँचे का निर्माण जो राष्ट्रीय आधार पर अभिवृद्ध उत्पादन को संभव बना सके और सामाजिक जीवन के सभी दकियानूसी रूपों के उन्मूलन के लिए निश्चय ही इस बात की आवश्यकता होती है कि पूरे राष्ट्र के प्रयास एक नये जीवन के निर्माण पर केंद्रित कर दिये जायें। परंतु सैनिक तनाव के अड्डों को बनाये रखने और साम्राज्यवादी ताकतों की हथियारों की होड़ जारी रखने की कोशिशों का "तीसरे विश्व" के देशों पर भी सबसे खतरनाक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे इन बातों से अपने को अलग नहीं रख सकते। वे अब भी अपने भौतिक तथा श्रम-बल के साधनों का काफी बड़ा हिस्सा आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास पर खर्च करने के बजाय सैनिक आवश्यकताओं पर खर्च करते हैं। उदाहरण के लिए, एशियाई तथा उत्तरी अफ्रीकी देशों का वार्षिक सैनिक खर्च 40 अरब डालर की भारी रकम का

है। उनकी सेनाओं में लगभग 1 करोड़ नौजवान काम करते हैं। एशिया तथा अफ्रीक- के सैनिक महत्व के कई प्रदेशों में साम्राज्यवादी हर प्रकार से हथियार जमा करने को प्रोत्साहन देते हैं। ईरान, सऊदी अरब, इस्रायल तथा दक्षिणी कोरिया जैसे देश हर साल आधुनिकतम हथियार खरीदने पर अरबों डालर खर्च करते हैं और यह सामान मुख्यत: अमरीका से आता है।

तनाव शैथिल्य, निरस्त्रीकरण की समस्यायों के विश्वव्यापी समाधान की दिशा में प्रगति और संसार के मुख्य प्रदेशों में सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की स्थापना से सिद्धांतत: यह सुनिश्चित हो जायेगा कि देशों के विकास के स्तर, उनकी समाज-व्यवस्थाओं तथा प्राकृतिक परिस्थितियों में अंतर होने के बावजूद उनके बीच बड़े पैमाने पर सहयोग के लिए अनुकूलतम परिस्थितियाँ उत्पन्न हों। बढ़ते हुए विश्वास तथा पारस्परिक सम्मान का वातावरण विकासशील देशों के लिए विशेषत: लाभदायक होगा जिन्हें इस बात की बेहद ज़रूरत है कि उनको विकास तथा उन्नति और बेरोज़गारी, ग़रीबी तथा पिछड़ापन खत्म करने की समस्याओं की ओर सहानुभूति का रवैया अपनाया जाये। शीत-युद्ध से लेकर स्थानीय सैनिक टकरावों तक के किसी भी और विकल्प से बेहद नुक़सान ही होता है क्योंकि श्रेष्ठतम श्रमबल, वैज्ञानिक तथा तकनीकी साधन और वित्तीय क्षमताएँ ऐसे उद्देश्यों में लगा दी जाती हैं जिनका मानवीयता, सामाजिक न्याय तथा समाज की भलाई से से कोई संबंध नहीं होता।

शांति तथा सुरक्षा की बुनियादी समस्याओं का समाधान हो जाने पर मानव-जाति अपना ध्यान कम विकसित देशों तथा प्रदेशों की तात्कालिक सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं की ओर मोड़ सकेगा और इन प्रदेशों के निवासियों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं की ओर अधिकतम ध्यान दे सकेगा। ये समस्याएँ केवल शांति की परिस्थितियों में ही हल की जा सकती हैं, जब शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा तनाव-शैथिल्य सार्वत्रिक स्वरूप धारण कर लें और उनको उल्टी दिशा में मोड़ सकना असंभव हो जाये।

एशिया तथा अफ्रीका के देशों की जनता अब इतिहास के हाथों का खिलौना नहीं रह गयी है। वह साम्राज्यवादी नव-उपनिवेशवाद के विरुद्ध

अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है और अंतरराष्ट्रीय तनावों को ओर भी कम करने में अधिकाधिक बड़ा योगदान कर रही है। इन देशों की जनता सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों की शांतिपूर्ण पहलक़दमियों का समर्थन करती है, जिनका उद्देश्य हथियारों की होड़ पर अंकुश लगाना और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में बल का प्रयोग न करने की विश्व संधि संपन्न कराना है।

फ़ीडेल कास्ट्रो ने अप्रैल 1977 में मास्को में सोवियत नेताओं से अपनी मुलाक़ात के अवसर पर कहा था, "समाजवादी शिविर की, विशेषरूप से सोवियत संघ की, साख तीसरा विश्व कहे जाने वाले देशों की जनता के बीच निरंतर बढ़ती जा रही है, जो हमारी बिरादरी को उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद, नस्लवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में अपना सबसे वफ़ादार साथी समझती हैं।

"जबकि साम्राज्यवाद स्वाभाविक रूप से सभी प्रतिक्रियावादी, दमनकारी तथा शोषक शासन-सत्ताओं का साथ देता है, समाजवादी शिविर एक ऐसा गढ़ है जो मजदूर वर्ग के लिए और दुनिया को बदलने वाली प्रगतिशील तथा क्रांतिकारी शक्तियों के लिए समर्थन तथा प्रेरणा का स्रोत है।"

मुक्ति की शक्तियों की सबसे उज्ज्वल आशाएँ अक्तूबर क्रांति की भूमि के साथ, समाजवादी राष्ट्रों की बिरादरी के साथ जुड़ी हुई हैं। हमारे युग की सभी क्रांतिकारी शक्तियों की एकता तथा अंतरराष्ट्रीय एकबद्धता का सुदृढ़ होना साम्राज्यवाद के विरुद्ध नयी विजय का, हमारे इस ग्रह पर अंततोगत्वा शांति, लोकतंत्र तथा समाजवाद के आदर्शों की विजय का आश्वासन है।

62142
7·5·79